# मार्क्सवादी दृष्टि और दिव्या में नारी

(जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केन्द्र की एम० फिल० की उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)


निर्देशक

डा० बी० एम० चिन्तामणि

प्रस्तुतकर्ता

नीरा वर्मा



भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा संस्थान

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

1980

# JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

भारतीय भाषा केन्द्र

Gram-JAYENU
Telephone :
New Mehrauli Road,
NEW DELHI-110067


दिनांक 12-6-1980

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री नीरा शर्मा द्वारा प्रस्तुत 'मार्क्सवादी दृष्टि और दिव्या में नारी' शीर्षक लघु शोध-प्रबंध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा किसी अन्य विश्वविद्यालय में इससे पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है। यह सर्वथा मौलिक है।

मुहम्मद हसन

(मुहम्मद हसन)
अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

(वी० एम० चिन्तामणि)
निर्देशक

# आमुख

## आमुख

यशपाल प्रगतिशील उपन्यासकार हैं । उन्होंने युग के सामाजिक यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टि से प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न अपनी रचनाओं में किया है । उन्होंने स्वयं भी मार्क्सवाद के प्रति अपनी प्रतिबद्धता घोषित की है । साथ ही मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रतिफलन भी भलीभाँति उनकी रचनाओं में मिलता है, परन्तु कुछ प्रतिष्ठित मार्क्सवादी आलोचकों का यशपाल पर आक्षेप है कि वे अपनी रचनाओं में मार्क्सवाद की प्रतिष्ठा सम्यक् रूप से नहीं कर पाये हैं, अपितु बायोलाजी उन पर अधिक हावी रही है । इस प्रकार यशपाल और उनके आलोचक — दोनों के मतों को ध्यान में रखते हुये, किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त होकर, मैंने यह प्रयास किया है कि दिव्या में नारी के स्वरूप को मार्क्सवादी दृष्टि के संदर्भ में स्पष्ट कर सकूँ । दिव्या बौद्धकालीन परिवेश में लिखी गई एक ऐसी ऐतिहासिक कल्पना है, जिसमें मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रभाव पूरी तरह से देखा जा सकता है ।

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध कुल तीन अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय में नारी संबंधी मार्क्सवादी चिन्तन का अध्ययन किया गया है । इसमें मार्क्सवाद के प्रमुख विचारकों के मतों को ऐतिहासिक परंपरा के विकास के संदर्भ में स्पष्ट किया गया है । सम्पूर्ण मानव जाति के इतिहास को आदिम साम्यवादी - व्यवस्था, दास - व्यवस्था, सामंती - व्यवस्था, पूँजीवादी-व्यवस्था एवं समाजवादी-व्यवस्था में विभक्त करके उसमें स्त्री-पुरुष संबंधों एवं परिवार तथा समाज में स्त्री के स्थान को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है ।

साथ ही हिन्दी के प्रमुख मार्क्सवादी उपन्यासकारों की नारी-विषयक दृष्टि को भी उनकी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है ।

द्वितीय अध्याय यशपाल की नारी संबंधी दृष्टि से सम्बद्ध है । इसमें यशपाल के संपूर्ण नारी चिन्तन का समाहार प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है । यशपाल की सामंती एवं पूंजीवादी रूढ़ियों के प्रति दृष्टि को भी चित्रित किया गया है । यशपाल के अधिकांश नारी - पात्र सचेतन एवं जागरूक हैं । यहाँ तक कि वे पुरुष - पात्रों से भी अधिक प्रगतिशील हैं । यशपाल ने उन्हें पुरुष - पात्रों से अधिक ऊँचा स्थान दिया है । झूठा सच, मेरी तेरी उसकी बात, अमिता, दिव्या आदि उपन्यासों के अध्ययन से ऐसा ही सिद्ध होता है ।

तृतीय एवं अन्तिम अध्याय, ' दिव्या ' में नारी के स्वरूप को स्पष्टतः रेखांकित करने का प्रयास किया गया है । ' दिव्या ' सामन्ती वातावरण में लिखा गया उपन्यास है, इसलिये इसमें नारी का भोग्या रूप ही सर्वाधिक मुखर हो कर सामने आता है । परन्तु यशपाल को नारी का यह रूप स्वीकार्य नहीं है, इसलिये वे उपन्यास की नायिका दिव्या को चारुवाक मारित के प्रति समर्पित कर देते हैं, जो कि स्त्री- पुरुष के समान संबंधों को स्वीकार करता है । उपन्यास को यह मोड़ देकर यशपाल ने मार्क्सवादी दृष्टि का ही परिचय दिया है ।

अब तक 'दिव्या' पर एकाधिक आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, किन्तु उनमें से किसी एक में भी लेखक के दृष्टिकोण को ध्यान में

नहीं रखा गया है, अपितु उपन्यास की परंपरागत विशेषताओं – कथानक, देशकाल और वातावरण, नायक, नायिका आदि के आधार पर उसका विश्लेषण किया गया है, जो कि उपन्यास की बनावट के अनुकूल नहीं है । प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध में 'दिव्या' का विश्लेषण परंपरागत धारणाओं के आधार पर न करके लेखक की मान्यताओं, मार्क्सवाद के सिद्धान्तों आदि के आधार पर किया गया है ।

भारतीय भाषा केन्द्र के विभागाध्यक्ष, डा० मुहम्मद हसन एवं भाषा संस्थान के अधिष्ठाता, डा० नामवर सिंह की अत्यन्त आभारी हूं, जिन्होंने मुझे अभीष्ट विषय पर शोध करने की अनुमति प्रदान की ।

आदरणीय डा० बी० एम० चिन्तामणि के कुशल निर्देशन में मेरा यह कार्य पूर्ण हुआ । अत्यधिक व्यस्त होते हुये भी उन्होंने समय-समय पर मुझे सहायता दी, उसके लिये मैं उनके प्रति अनुगृहीत हूं ।

मंगल जी के प्रति भी धन्यवाद प्रकट करती हूं, जिन्होंने अपना पूर्ण सहयोग दिया ।

नीरा वर्मा

— नीरा वर्मा

## अनुक्रमणिका


पृष्ठ

: आमुख 1 – 3

अध्याय एक

: नारी संबंधी मार्क्सवादी दृष्टि 5 – 34

अध्याय दो

: यशपाल की नारी विषयक दृष्टि 35 – 72

अध्याय तीन

: दिव्या में नारी का स्वरूप 73 – 102

: ग्रंथ-सूची 103 – 107


—

# अध्याय एक

## नारी संबंधी मार्क्सवादी दृष्टि

## अध्याय - एक

## नारी सम्बन्धी मार्क्सवादी दृष्टि

अन्य क्षेत्रों की भाँति मार्क्सवाद ने नारी-पुरुष के सम्बन्धों को भी भौतिक विकास के साथ जोड़कर देखने का प्रयास किया है । मार्क्सवादियों के अनुसार मानव-जीवन के आदि काल में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों का जो स्वरूप उपलब्ध होता है, वह आधुनिक कालीन सम्बन्धों से बहुत भिन्न प्रतीत होता है । क्योंकि सामाजिक व्यवस्था के बदलने के साथ-साथ आर्थिक आधार बदलते रहते हैं और आर्थिक आधारों के परिवर्तन के कारण स्त्री और पुरुष के आपसी संबंध बदलते रहते हैं । इन सम्बन्धों के परिवर्तन का कारण कोई दैवी शक्ति न होकर आर्थिक आधार है, जिसके कारण ये परिवर्तित होते रहते हैं — ''..... पुरुष और नारी के सम्बन्धों की नैतिकता या आचार-शास्त्र का नियन्त्रण किसी ईश्वर या प्रकृति के हाथों से नहीं होता — हर युग में वे एक से नहीं रहते, वे लगातार बदलते रहते हैं और नीचे से ऊँचे स्तर की ओर, पूर्णता की ओर बढ़ते रहते हैं ।''[1] स्पष्ट है कि भौतिक विकास के साथ ही साथ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का भी विकास होता है । इस विकास को रेखांकित करने के लिए मार्क्सवाद मानव - इतिहास को आदिम साम्यवादी युग, दास व्यवस्था युग, सामन्ती व्यवस्था युग, पूँजीवादी व्यवस्था युग में बाँट कर देखता है । अतः नारी की स्थिति को समझने के लिए हम मानव-इतिहास को दो भागों में विभक्त करके देख सकते हैं —

1) सभ्यता से पूर्व आदिम साम्यवादी युग में नारी की स्थिति

2) सभ्यता - युग में नारी की स्थिति — दास व्यवस्था में नारी, सामन्ती व्यवस्था

---

1- श्रीपाद अमृत डांगे — 'भारत – आदिम साम्यवाद से लेकर दास -व्यवस्था तक का इतिहास', पृ० 76-77

में नारी, पूंजीवादी व्यवस्था में नारी, समाजवादी व्यवस्था में नारी ।

1) सभ्यता से पूर्व आदिम साम्यवादी युग में नारी की स्थिति :

सभ्यता के उदय से पूर्व नारी - पुरुष के संबंध आज से नितांत भिन्न थे । इसका कारण तत्कालीन आर्थिक सामाजिक परिस्थितियाँ हैं । उस समय स्त्री और पुरुष अलग-अलग जोड़ों में न रह कर समूहों में रहते थे क्यों कि तब उत्पादन सामूहिक था । किसी की कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी अतः स्त्री - पुरुष भी आपस में बँटे हुये नहीं थे अपितु प्रत्येक पुरुष प्रत्येक स्त्री का पति होता था और सभी स्त्रियाँ सभी पुरुषों की पत्नियाँ होती थीं । मोर्गन ने इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि '' एक कबीले के अन्दर अनियन्त्रित यौन-संबंध होते थे और हर स्त्री पर हर पुरुष का समान रूप से अधिकार होता था । और उसी प्रकार हर पुरुष पर हर स्त्री का समान रूप से अधिकार होता था ।''[1] ऐसे सामूहिक उपभोग के युग में नैतिकता या आचारशीलता जैसे शब्दों का निर्माण नहीं हुआ था अतः स्त्री - पुरुष के संबंध नैसर्गिक रूप में थे अर्थात् किसी प्रकार के रिश्तों का आविष्कार नहीं हुआ था । यही कारण है कि उस समय न केवल भाई - बहन में पति - पत्नी का सा संबंध होता था अपितु माता - पिता और उनके बच्चों में भी यौन - संबंधों की रवाजत थी । ऐसे सगोत्र परिवारों में ''भाई - बहन, पास के और दूर के चचेरे, फुफेरे, ममेरे भाई-बहन, सब एक दूसरे के भाई बहन होते हैं और ठीक इसीलिये वे सब एक दूसरे के पति - पत्नी होते हैं ।''[2] अब परन्तु धीरे- धीरे

---

1- एंगेल्स – 'परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्यसत्ता की उत्पत्ति'–, पृ०38

2- वही, पृ० 46

परिवार की यह पद्धति परिवर्तित होने लगी । पहले माता - पिता और उनकी सन्तान के परस्पर यौन-संबंधों को अनुचित ठहराया गया , तत्पश्चात् भाई - बहनों के इस प्रकार के संबंधों पर भी रोक लगायी गयी , जिसे लागू करना पहले कदम से अधिक कठिन था क्योंकि भाई-बहनों की आयु में अन्तर कम होता है । परन्तु ऐसा देखने में आता है कि जिन कबीलों में रक्त संबंधियों में परस्पर यौन-संबंध निषिद्ध कर दिये गये, उन कबीलों में अन्य कबीलों की अपेक्षा कहीं जल्दी और अधिक पूर्ण विकास किया ।[1] इस प्रकार सगोत्र परिवार व्यवस्था का स्थान धीरे-धीरे यूथ परिवार व्यवस्था ने ले लिया, जिसमें एक समुदाय की स्त्रियाँ दूसरे समुदाय के पुरुषों की पत्नियाँ होती थीं, लेकिन उनकी बहनें नहीं होती थीं ।

यूथ विवाह-व्यवस्था वाले परिवारों में चूंकि एकनिष्ठता नहीं थी, अतः इस बात का निश्चय करना लगभग असंभव ही था कि अमुक बच्चे का पिता कौन है । लेकिन माता का पता लगाने में किंचित भी कठिनाई नहीं होती थी, यदि माँ समुदाय के सभी बच्चों को अपना बच्चा कहती थी, किन्तु यह सर्वथा स्पष्ट था कि उसकी अपनी सन्तान कौन सी है । जबकि पुरुष के विषय में ऐसा नहीं जाना जा सकता था । इसीलिये तब माँ के नाम से वंश चलता था । इस विषय में भी डौगि का यह कथन उपयुक्त ही प्रतीत होता है --''इस प्रकार के यूथ विवाहों में माता के जनकत्व को ही पहचाना जा सकता था और एक-आर्थिक व्यवस्था में अपनी प्रमुखता के कारण वह परिवार की स्वामिनी होती थी और

---

1- एंगेल्स - 'परिवार व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य सत्ता की उत्पत्ति' - पृ0 48-49

इसलिये मातृ परंपरा के अनुसार पीढ़ियाँ चलती थीं ।..... सामूहिक अथवा साम्यवादी परिवार प्रथा तथा यूथ विवाह की पद्धति मातृ-सत्ता व्यवस्था की आधार थी । इसी प्रकार से सब समाजों की उत्पत्ति हुई और आर्यों का समाज भी इसी प्रकार उत्पन्न हुआ ।''[1]

सामूहिक उत्पादन और उपभोग के इस युग में स्त्री और पुरुष के अधिकार बराबर थे । पुरुष, उस समय, भोजन के साधन इकट्ठा करने का कार्य करता था और स्त्रियाँ घर का काम - काज संभालती थीं लेकिन स्त्रियों का यह कार्य किसी भी तरह कम महत्व का नहीं गिना जाता था अपितु उन्हें पूरा - पूरा आदर दिया जाता था और उसे सही अर्थों में घर की मालकिन समझा जाता था ।"घर के भीतर नारी की सत्ता सर्वोच्च होती है , उसी प्रकार जैसे केवल सगी माँ को मानने के कारण और सगे पिता का निश्चयपूर्वक पता लगाना असंभव होने के कारण, स्त्रियों का अर्थात् माताओं का बड़ा आदर होता है । समाज की उत्पत्ति के समय नारी पुरुष की दासी थी, यह एक बिल्कुल बेहूदा विचार है ।''[2]

आदिम साम्यवादी विवाह के संबंध में बढ़ते हुये प्रतिबंधों के कारण यूथ विवाह अधिकाधिक असंभव होता गया और यह आवश्यक हो गया कि स्त्री तथा पुरुष युग्मों में रहें । हालाँकि यूथ - विवाह के समय से ही पुरुष और स्त्री जोड़ी में रहना पसंद करने लगे थे । ऐसे युग्म परिवार में

---

1- श्रीपाद अमृत डांगे -'भारत - आदिम साम्यवाद से [illegible] दास [illegible] [illegible], [व्यवस्था तक का इतिहास]
पृ0 85

2- एंगेल्स -'परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्यसत्ता की उत्पत्ति, पृ062

पुरुष एक स्त्री के साथ तो रहता ही था, परन्तु अन्य स्त्रियों से संबंध रखने का उसका अधिकार भी बना रहता था । इस प्रकार यह युग्म परिवार व्यवस्था पितृ सत्ता के आगमन की ओर ही संकेत करती है ।

युग्म परिवार प्रथा के समय से ही सामाजिक स्थिति में गहरा परिवर्तन आना शुरू हो गया था । पुरुष ने नये-नये यंत्रों का आविष्कार कर लिया था, उसने खेती और पशु-पालन का कार्य भी प्रारंभ कर दिया था । फलतः वह अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने लगा और सम्पत्ति संचय करने लगा । इस प्रकार जैसे - जैसे सम्पत्ति बढ़ती गई, वैसे - वैसे उसके कारण एक ओर तो परिवार के अंदर नारी की तुलना में पुरुष का महत्व और पद ज्यादा महत्वपूर्ण होता गया और दूसरी ओर पुरुष के मन में यह इच्छा और पकड़ती गई कि अपनी पहले से मजबूत स्थिति का फायदा उठाकर उत्तराधिकार की पुरानी प्रथा को उलट दिया जाये ताकि उसके अपने बच्चे हकदार हो सकें । परन्तु जब तक मातृ-अधिकार के अनुसार वंश चल रहा था, तब तक ऐसा करना असंभव था । इसलिये आवश्यक था कि मातृ- अधिकार को उलटा जाये ।[1] इसके लिये पुरुष की सम्पत्ति ही सहायक सिद्ध हुई । परिणामस्वरूप पुरुष के कार्य को ही पूर्ण प्रधानता दी जाने लगी । स्त्री का कार्य और स्थान गौण हो गया और

---

1- एंगेल्स — 'परिवार व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य सत्ता की उत्पत्ति'— पृ0 72

धीरे - धीरे घर के अन्दर और बाहर दोनों जगह प्रमुख भूमिका प्राप्त करने के कारण पुरुष परिवार में भी प्रमुख होता गया । स्त्री के नाम से वंश चलना और माता के द्वारा उत्तराधिकार मिलना समाप्त हो गया । अब वंश चलाने वाला पुरुष हो गया और उत्तराधिकार भी पिता के द्वारा ही मिलने लगा -- अर्थात् स्वामित्व का अधिकार बिल्कुल ही बदल गया । यह सब परिवर्तन किस ईस्वी सन् में हुआ -- इसका पता कोई भी नहीं लगा सका है । उपनिषदों एवं वेदों में दी गई कथाओं से इसका आभास अवश्य मिलता है । डांगे के अनुसार --'' नारी ने अपने स्वत्व की रक्षा के लिये संघर्ष भी किया, कुछ स्थानों पर साम्य संघ की पुरानी रूढ़ियों ने जीवित रहने की कोशिश की । पर दासों के स्वामी पुरुष ने उन सबको निर्दयता और कठोर हिंसा के द्वारा दबा दिया । इस बात का विवरण हमें तीन कथाओं में स्पष्ट रूप से मिलता है । सुदर्शन और ओघवती, गौतम और गौतमी, तथा जमदग्नि और रेणुका की कथाओं में इसको स्पष्टता से देखा जा सकता है । ये कथाएँ यह भी बताती हैं कि किस प्रकार गोत्र साम्य संघ युग की नीति और विचारधारा दास युग में बदल गयी थी ।''[1]

युग्म विवाह के समय तक स्त्री को पुरुष - विशेष की सम्पत्ति के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता था, अपितु उस समय तक पुरुष और स्त्री के अधिकार प्रायः बराबर थे । परन्तु मातृ सत्ता के समाप्त होने पर स्वामित्व से वंचित होकर वह पुरुष की सम्पत्ति बनकर रह गई । इसीलिये ''मातृसत्ता

---

1- श्रीपाद अमृत डांगे --''भारत आदिम साम्यवादी युग से लेकर दास[illegible], व्यवस्था तक का इतिहास
पृ0 137

का विनाश नारी-जाति की एक ऐसी पराजय थी जिसका पूरे विश्व के इतिहास पर प्रभाव पड़ा । अब घर के अन्दर भी पुरुष ने अपना आधिपत्य जमा लिया । नारी पदच्युत कर दी गई । वह जकड़ दी गयी । वह पुरुष की वासना की दासी, संतान उत्पन्न करने की एक मशीन मात्र बनकर रह गयी ।...[1] यहाँ तक कि यदि पुरुष उसे जान से भी मार डालता था, तो अपने अधिकार को ही प्रयुक्त करता था ।

पितृ सत्तात्मक परिवार के ज़ोर पकड़ने के फलस्वरूप एक निष्ठ विवाह का प्रारंभ हुआ क्योंकि प्रामाणिक उत्तराधिकारी के लिए नारी की एकनिष्ठता आवश्यक थी, इसलिये एकनिष्ठ विवाह का प्रचलन हुआ । अब नारी के हाथ में इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि वह जब चाहे विवाह-संबंध को तोड़ दे, अपितु केवल पुरुष को ही यह अधिकार प्राप्त था कि वह जब चाहे अपनी पत्नी को त्याग दे । फलतः अपनी पत्नी के प्रति वफ़ादार न रहने का अधिकार भी उसे मिल गया । इस प्रकार यह एकनिष्ठता मात्र पत्नी के लिये थी, ताकि वह पुरुष को उसकी सन्तान के रूप में उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी दे सके । साथ ही नारी की सतीत्व-भावना तथा पुरुष के प्रति उसकी पति - भक्ति की भावना ने इसे और अधिक सरस भी कर दिया । एक निष्ठ विवाह संबंधी इस विवेचन से स्पष्ट है कि यह किसी भी तरह से व्यक्तिगत प्रेम का परिणाम न होकर सामूहिक सम्पत्ति के ऊपर व्यक्तिगत सम्पत्ति की विजय के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ है । यूनानी लोग तो खुले आम यह स्वीकार करते थे कि एकनिष्ठ विवाह का उद्देश्य केवल यह था कि परिवार पर पुरुष का शासन रहे और

---

1- एंगेल्स--'परिवार ,व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य-सत्ता की उत्पत्ति'--,

पृ० 74

ऐसे बच्चे पैदा हों जो केवल उसकी अपनी सन्तान हों और जो उसकी सम्पत्ति के अधिकारी बन सकें ।...[1] इस तरह से एकनिष्ठ विवाह पुरुष-नारी का उच्चतम मिलन नहीं, अपितु नारी पर पुरुष के आधिपत्य के रूप में ही प्रकट होता है और यहीं से सभ्यता के उस युग का प्रारंभ भी होता है जिसने दास प्रथा और व्यक्तिगत धन-सम्पदा की ऐसी महत्वपूर्ण देन दी है, जो आज तक चली आ रही है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सभ्यता-युग से पूर्व आदिम साम्यवादी युग में सामूहिक सम्पत्ति एवं उपभोग के समय स्त्री और पुरुष के अधिकार बिल्कुल बराबर थे, नारी को पुरुष के समान ही आदर, सम्मान प्राप्त था किन्तु सभ्यता युग में व्यक्तिगत सम्पत्ति की उत्पत्ति के फलस्वरूप नारी की स्थिति एकदम बिगड़ गई, पुरुष को सम्पूर्ण स्वामित्व मिलने के कारण नारी के शोषण का जो दमन चक्र प्रारंभ हुआ, वह आज भी प्राप्त होता है ।

2) सभ्यता-युग में नारी :

सभ्यता युग का प्रारंभ एकनिष्ठ विवाह, पितृसत्ताक समाज तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति के उदय के साथ-साथ माना जाता है । नारी की स्थिति को स्पष्ट करने के लिये सभ्यता युग को चार विभिन्न व्यवस्थाओं में विभक्त करके देखा जा सकता है—(क) दास व्यवस्था, (ख) सामन्ती व्यवस्था , (ग)पूँजीवादी व्यवस्था , (घ) समाजवादी व्यवस्था ।

---

1- एंगेल्स —'परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्यसत्ता की उत्पत्ति', पृ० 86

### (क) दास व्यवस्था में नारी :

इस युग के प्रारंभ को व्यक्तिगत सम्पत्ति के प्रारंभ के साथ जोड़ कर देखना सर्वथा उचित प्रतीत होता है । जैसे जैसे उत्पादन के साधन बढ़ने लगे, वैसे-वैसे साधन के स्वामी को अतिरिक्त श्रम की आवश्यकता महसूस होने लगी । इसके लिये वह अन्य समुदायों के लोगों पर आक्रमण करके उन्हें दास बनाकर अपने उत्पादन-कार्य में नियोजित करने लगा । इस प्रकार पहली बार दास और स्वामी- दो वर्ग बन गये । "लगभग तीन हजार वर्ष ईसा पूर्व से लेकर दो हजार वर्ष ईसा पूर्व के समय में आर्यों ने सिन्धु की घाटी पर आधिपत्य, वहां के मूल निवासियों पर विजय तथा वर्ग-व्यवस्था और दासता का विकास कर लिया था ।"[1] दास-व्यवस्था में नारी की स्थिति बहुत दयनीय हो गई । उसकी स्थिति किसी सेवक से भिन्न न थी । वह पुरुष के शरीर की दासी थी और उसके पुत्र-पुत्रियों की जननी । अतः नारी के लिए एकनिष्ठता आवश्यक हो गई, जबकि यह पुरुष के लिए आवश्यक नहीं थी । साम्यसंघ का अंत हो जाने, दास-प्रथा के आरंभ होने और वर्गशासन के स्थापित हो जाने के बाद से समाज में वेश्यावृत्ति और पर स्त्री गमन की स्थापना हो गयी । आर्थिक क्षेत्र में नारी-पराजय में नारी को पुरुष और निजी सम्पत्ति का शारीरिक और नैतिक दास बना दिया ।"[2] इस तरह नारी की सार्थकता केवल दासी की तरह घर का काम-काज करने या पुरुष को दैहिक संतुष्टि देने तक रह गई । आर्थिक क्षेत्र में उसका अधिकार बिल्कुल

---

1- श्रीपाद अमृत डांगे— 'भारत - आदिम साम्यवाद से लेकर दास प्रथा तक', पृ० 15।
2- वही, पृ० 134-135

समाप्त कर दिया गया । उत्पादन के क्षेत्र में उसका योगदान केवल इतना रहा कि वह दासी-कर्म करती रहे ।

विवाह के लिये उसकी राय नहीं ली जाती थी, विवाह के बाद भी उसे परिवार के मुखिये की मर्जी के अनुसार चलना पड़ता था । यह उस समय की प्रथा थी कि अपने पति की अंक शायिनी बनने से पहले उसे कबीले के मुखिये या सरदार को समर्पित होना पड़ता था । पितृ सत्तात्मक समाज ने पुरुष अर्थात् पति को नारी के लिये परमेश्वर बना दिया और नारी अर्थात् पत्नी को उसकी दासी । यह धारणा आज भी नारी के मन में ज्यों की त्यों बनी हुई है ।

(ब) सामन्ती व्यवस्था में नारी :

सामंती व्यवस्था में, जिसका प्रारंभिक काल ई० सन् 320 से माना जाता है[1], नारी की सामाजिक स्थिति दास-व्यवस्था से भी बदतर हो गई । दास-व्यवस्था में उसका उत्पादन में इतना हिस्सा तो होता था कि वह दास्य-कर्म करती हुई घर से बाहर निकल सके किंतु सामन्ती व्यवस्था में तो वह जैसे घर की चारदीवारी में ही कैद कर दी गई । उत्पादन के क्षेत्र में बिल्कुल भी सहायता न देने के कारण आर्थिक रूप से पुरुष के आधीन हो गई । इसी कारण उन दोनों में असमानता और अधिक गहरी हो गई । अब उसे बार-बार यही जताया जाता था कि पति ही उसका परमेश्वर है और उसे उसकी सेविका या दासी बनकर ही रहना चाहिए । इसके लिए जहाँ तक संभव हो सका पुरुष ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए धार्मिक रूढ़ियों आदि का आश्रय भी

---

1- के० दामोदरन —'भारतीय चिन्तन परंपरा', पृ० 207

लिया —'' पुरुष और समाज के हाथ में जितने भी साधन धर्म, रीति, रिवाज आदि के रूप में थे, उनसे स्त्री को पुरुष के आधीन होकर चलने की शिक्षा दी गई । पराधीनता और शासन को स्वयं स्वीकार करना ही उसके लिये सम्मान और आदर की कसौटी निश्चित की गई । उसे समझाया गया, यदि वह पुरुष का मुकाबिला भले ही कर ले परन्तु परलोक में उसे पछताना पड़ेगा क्योंकि उसकी स्वतन्त्रता भगवान की आज्ञा और धर्म के विरुद्ध है ।''[1] इस प्रकार उसे परलोक आदि का भय देकर पुरुष के आधीन बनाये रखने का सफल प्रयत्न किया गया । उस काल की कुछ स्त्रियों का गुणगान भी मिलता है, परन्तु ये सब स्त्रियां इसीलिये वन्दनीय मानी गई क्योंकि वे अपने पुरुष के प्रति एकनिष्ठ ही नहीं अपितु उसकी छाया के समान भी थीं । इस संदर्भ में उपाध्याय जी का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है कि —'' रामायण महाभारत काल की नारी यदि बड़ी है, तो इसलिये कि वह अपने एकाकी नर की छाया है, उसकी सतत अनुगामिनी है । सीता बड़ी इसलिए है कि वह राम की सतत छाया है । गान्धारी आदरणीया इस कारण है कि आँखें होते हुये भी उसने संसार का वह ऐश्वर्य न देखना चाहा जो उसके पति धृतराष्ट्र के लिये अदृष्ट था ।..... भारतीय नारी का आचरण वास्तव में त्याग और सहिष्णुता की पराकाष्ठा है ।''[2] इसी सहनशीलता का परिणाम ही है कि आदिम साम्यवादी काल की

---

1- यशपाल —'मार्क्सवाद', पृ० 8।

2- भगवतशरण उपाध्याय —'भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण', पृ० 200

स्वतंत्रता नारी से छिनती रही है और पुरुष उस स्वतंत्रता को अधिकाधिक प्राप्त करता रहा है । नारी के लिये जो कुछ भयानक सामाजिक अपराध समझा जाता रहा है वही पुरुष के लिये सम्मानप्रद बात समझी जाती रही है । इसीलिये स्त्री के लिये एकनिष्ठता बनाई गई, जबकि पुरुष अनेक विवाह करके भी वेश्यागमन करता रहा और समाज में सम्मान प्राप्त करता रहा ।

(ग) पूंजीवादी व्यवस्था में नारी :

सभ्यता काल के प्रारंभ होने के साथ-साथ ही अर्थात् निजी सम्पत्ति के उदय होने पर दासों के साथ ही साथ नारी ने भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व खो दिया । सदियों की दासता के पश्चात् जब दासों को रखने की निजी सम्पत्ति का अन्त हुआ तो एक दूसरी प्रकार की निजी सम्पत्ति का जन्म हुआ -- जिसका स्वामी सामंती जमींदार बना । उसका अंत होने पर निजी - सम्पत्ति का स्वामी पूंजीपति बना । इस प्रकार नारी की दशायें भी इस सब के साथ-साथ परिवर्तित हो गई, दासी से वह चेरी बनी और चेरी से सर्वहारा हो गई, किन्तु उसकी दासता नहीं मिटी ।[1] इस तरह पूंजीवाद में नारी की दासता का वह रूप सामने आता है जिसमें वह मात्र उत्पादक - मशीन बनकर रह गई है ।

पूंजीवादी व्यवस्था में नारी का दोहरा शोषण होता है -- घर में तथा उत्पादन क्षेत्र में । घर का सारा काम-काज नारी के जिम्मे ही रहता है, चाहे वह कहीं मजदूरी करती है या नौकरी । मजदूरी के बदले में उसे

---

1- श्रीपाद अमृत डांगे --'भारत - आदिम साम्यवाद से लेकर दास ~~प्रथा तक~~ व्यवस्था तक का इतिहास'
पृ0 139

पैसा मिलता है किन्तु घर का काम मुफ्त में ही करना पड़ता है । वह अपने पूरे सामर्थ्य के अनुसार उत्पादन के क्षेत्र में काम करती है, किन्तु उसे वेतन पुरुष के बराबर नहीं दिया जाता । यही नहीं विवाह के पश्चात् गर्भावस्था में भी उसे पूरा काम करना पड़ता है साथ ही प्रसव काल का या तो उसका वेतन काट लिया जाता है या फिर सेवा-निवृत्त कर दिया जाता है । बेरोज़गारी के आधिक्य के कारण आजीविका कमाने के लिये उसे कई बार अपना शरीर बेचने पर भी मजबूर होना पड़ता है ।

पूँजीवादी व्यवस्था में विवाह का आधार प्रेम या पारस्परिक सामंजस्य न होकर सम्पत्ति है । वर या वधू को उसके वैयक्तिक गुणों के आधार पर नहीं अपितु उसकी सम्पत्ति के आधार पर पसंद किया जाता है --'' पूँजीवादी विचारों के अनुसार विवाह भी एक करार होता है, एक कानूनी चीज होता है, बल्कि कहना चाहिये कि वह सबसे महत्त्वपूर्ण करार होता है, क्योंकि उसके द्वारा दो व्यक्तियों के तन और मन का जीवन भर के लिये सौदा किया जाता है ।''[1] विवाह को सौदा माना जाने के कारण वर या वधू की पसंद का कोई योगदान नहीं रहता ।

इस व्यवस्था में चाहे नारी मजदूरी करती है परन्तु फिर भी वह उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व के कारण पुरुष के आधिपत्य से मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकती । जिनपरिवारों में वह नौकरी न करके केवल गृह-कार्य संभालती है, वहाँ भी उसकी स्थिति मजदूर से बेहतर नहीं होती --''आज

---

1- एंगेल्स --' परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य सत्ता की उत्पत्ति',
पृ० 107

अधिकतर परिवारों में, कम से कम सम्पत्तिवान वर्गों में, पुरुषों को जीविका कमानी पड़ती है और परिवार का पेट पालना पड़ता है और इसी परिवार के अन्दर उसका आधिपत्य कायम हो जाता है और उसके लिए किसी कानूनी विशेषाधिकार की आवश्यकता नहीं पड़ती । परिवार में पति पूंजीपति होता है, पत्नी सर्वहारा की स्थिति में होती है ।''[1]

जहाँ एक ओर मध्यमवर्गीय तथा साधन हीन निम्नवर्गीय स्त्रियाँ पुरुष की सम्पत्ति या उपयोग-भोग में आने वाली वस्तु बनी रहती हैं वहाँ दूसरी ओर उच्चवर्गीय नारियों की स्थिति सभी साधनों से परिपूर्ण रहने पर भी कुछ अच्छी नहीं है, क्योंकि वे आत्मनिर्भर नहीं हैं । यशपाल मानते हैं कि ''साधन सम्पन्न और अमीर श्रेणी की स्त्रियाँ यद्‌यपि भूख और गरीबी से नहीं तड़पती परन्तु उनके जीवन में भी आत्मनिर्णय और विकास का द्‌वार बन्द है । समाज के लिए ये एक प्रकार से बोझ हैं क्योंकि ये केवल खर्च ही करती हैं, समाज के लिए उत्पन्न कुछ नहीं करतीं । संतान पैदा करने और पुरुष को रिझाने के सिवा वे प्रायः कुछ भी नहीं करतीं इसलिये उन्हें पुरुष की मोहताज रहना होगा।''[2]

स्पष्ट है कि पूंजीवादी व्यवस्था नारी को सामंती युग द्‌वारा निर्मित चारदीवारी से बाहर निकालकर उत्पादन के क्षेत्र में अवश्य खड़ा करती है, किन्तु पुरुष-प्रधान समाज में उसे उचित स्थान नहीं दे पाती, वह समानता का अधिकार तो नारी को समाजवादी व्यवस्था में ही मिल सकता है ।

(घ) समाजवादी व्यवस्था में नारी :

यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत

---

1- ऐंगेल्स —'परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और [illegible] राज्य सत्ता की उत्पत्ति', पृ० 99

2- यशपाल —'मार्क्सवाद', पृ० 83

शक्तियों के स्थान पर सामाजिक शक्तियों का अधिकार स्थापित होता है, समाज से वर्ग-भेद, जाति-भेद मिट जाता है । साम्यवादी व्यवस्था स्त्री को पुरुष के समान अधिकार दिलवाने में पूरी सहायता करती है ।

आर्थिक स्वतन्त्रता :

मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार स्त्री तभी से पुरुष के आधीन चली आ रही है, जब से वह उत्पादन-क्षेत्र से बाहर निकाल दी गई थी और उत्पादन के साधन-स्रोतों तथा उत्पादित सम्पत्ति पर पुरुष का आधिपत्य स्थापित हो गया था । इसलिये अब अपनी स्वतंत्र सत्ता प्राप्त करने के लिये नारी के लिये आवश्यक हो गया है कि वह घर की चारदीवारी को तोड़कर उत्पादन-क्षेत्र में कार्य करे । इस संबंध में लेनिन का विचार है कि औरतें जब तक घरेलू काम में लगी हुई हैं, तब तक उनकी स्थिति अभी बाधित ही है । औरतों की पूरी आजादी हासिल करने और उन्हें समस्त मर्दों के बराबर बनाने के लिये हमारी यहां सामाजिक अर्थ-व्यवस्था होना और आम उत्पादन-श्रम में औरतों का भाग लेना जरूरी है । तब जाकर औरतें मर्दों जैसी स्थिति प्राप्त करेंगी ।[1] और यह देखने में भी आया है कि जिन परिवारों में स्त्रियां श्रम के क्षेत्र में कार्य करती हैं और परिवार के लिए जीविका कमाती हैं उन श्रमिक परिवारों में पुरुष के आधिपत्य का आधार ही खण्डित हो जाता है । इस प्रकार आर्थिक स्वायत्ता के अवसर को प्राप्त करके ही स्त्रियां पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त कर सकती हैं और समाज से मिलने वाले अनादर एवं अपमान के विरुद्ध लड़ सकती हैं ।[2] पूंजीवादी व्यवस्था नारी को गर्भावस्था में न तो पूरी सुविधा ही देती है और न ही प्रसवकाल में उसे वेतन देती है, परन्तु समाजवादी व्यवस्था में नारी को ऐसे समय में अतिरिक्त सुविधाओं के साथ-साथ पूरा वेतन भी दिया जाता है ।

1- लेनिन –' नारी मुक्ति' पृ0 95
2- कम्युनिस्ट पार्टी पब्लिकेशन –वीमेन्स मूवमेन्ट एण्ड कम्युनिस्ट पार्टी ।

<u>व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति :</u>

सामाजिक विकास में स्त्री को पुरुष के बराबर लाने के लिये सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का सामाजिकीकरण कर दिया जाये, अर्थात् सम्पत्ति एवं उत्पादन के साधनों पर किसी एक का अधिकार न होकर सारे समाज का अधिकार हो, सामूहिक उत्पादन हो और सामूहिक उपभोग हो । सम्पत्ति के सामाजिकीकरण होने से पुरुष का स्त्री पर आधिपत्य समाप्त हो जायेगा, क्योंकि यह आधिपत्य पुरुष के आर्थिक प्रभुत्व के कारण उत्पन्न हुआ है । इस प्रभुत्व के समाप्त होने पर स्त्रियाँ पुरुषों का प्रचलित व्यभिचार सहन करने के लिये विवश नहीं रहेंगी, फलस्वरूप स्त्री और पुरुष में सही समानता स्थापित हो जायेगी । परन्तु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि एक निष्ठ विवाह जो कि निजी सम्पत्ति के उदय के कारण प्रारंभ हुआ था क्या अपनी बुनियाद ढह जाने के कारण समाप्त हो जायेगा, स्त्री पर पुरुष का आधिपत्य समाप्त हो जाने पर क्या वह बहुत से पुरुषों से संबंध नहीं रखने लगेगी ? इस पर विचार करते हुए एंगेल्स का कथन है कि एकनिष्ठ विवाह तब मिटेगा नहीं, बल्कि पूर्णता प्राप्त करने की ओर बढ़ेगा । कारण कि उत्पादन के साधनों के समाज की सम्पत्ति बन जाने से मजूरी पर काम करने की प्रथा और सर्वहारा मजदूर वर्ग भी मिट जायेंगे, और उसके साथ-साथ यह आवश्यकता भी जाती रहेगी कि एक निश्चित संख्या में..... स्त्रियाँ पैसे लेकर अपनी देह को पुरुषों के हाथों में सौंप दें । तब वेश्यावृत्ति का अंत हो जायेगा, और एकनिष्ठता मिटने के बजाय पहली बार पूर्णता और वास्तविकता प्राप्त करेगी और स्त्रियों के साथ-साथ पुरुषों

DISS
O,152,3,N03,1:g
152M0
TH-494
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY LIBRARY

पर भी लागू होने लगेगी ।[1] स्पष्ट है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति के साथ ही नारी जाति पर पुरुष का आधिपत्य भी समाप्त हो सकेगा ।

घरेलू वातावरण भरे से मुक्ति :

सामाजिक क्षेत्र में विकास के लिये आवश्यक है कि नारी घरेलू वातावरण से मुक्ति प्राप्त करे । आदिम साम्यवादी युग में जब श्रम का पहली बार बंटवारा हुआ था तब नारी के घरेलू काम को पुरुष के जीविका कमाने के काम के बराबर महत्व दिया जाता था । परन्तु कालान्तर में पुरुष का काम ही सब कुछ रह गया और नारी का कार्य नगण्य हो गया । पुरुष नारी को अकेले ही घर के काम-काज में खपता देखता रहता है, परन्तु उनके काम में हाथ बंटा कर उनके बोझ को कम नहीं करता । वह समझता है कि छुट्टी और आराम पुरुष के लिये बने हैं । इसलिये अब आवश्यक हो गया है कि नारी सामाजिक पैमाने पर, उत्पादन के क्षेत्र में भाग ले और घरेलू काम-काज पर ध्यान कम दे । समाजवादी देशों में मेहनतकश औरतों के आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य औरतों को केवल औपचारिक समता के लिए नहीं, बल्कि आर्थिक और सामाजिक समता के लिए लड़ना है । मुख्य काम औरतों को उत्पादक श्रम में खींचना है, उन्हें 'घरेलू गुलामी' में से निकालना है, रसोईदारी और धायगीरी के चिरन्तन तथा एकान्तिक वातावरण की हतबुद्धिकर और अपमानजनक ताबेदारी से मुक्त करना है ।[2] इसे कार्यान्वित करने के लिये समाजवादी देशों में

1- एंगेल्स -' परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य सत्ता की उत्पत्ति', पृ0 101

2- लेनिन -'नारी मुक्ति', पृ0 96

यह व्यवस्था है कि वहाँ भोजन-प्रबंध, बच्चों का पालन आदि को सार्वजनिक उद्योग के रूप में मान्यता दे दी गई है : सार्वजनिक भोजनालय, शिशु-शालायें, किंडर गार्टन – ये हैं उस अंकुरों के नमूने, ये हैं वे सीधे-सादे, रोजमर्रा के साधन जिनमें कुछ भी शानदार, ठाटदार या समारोहपूर्ण नहीं है और जो दरअसल औरतों को आज़ादकर सकते हैं, जो दरअसल सामाजिक उत्पादन और सार्वजनिक जीवन में उनकी भूमिका के लिहाज से मर्दों के साथ उनकी नाबराबरी को कम और उसका अंत कर सकते हैं।"[1] मार्क्सवादी दृष्टि बच्चों के पालन-पोषण को केवल स्त्री का सिरदर्द नहीं मानती, अपितु इसे सामाजिक उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुये यह घोषित करती है कि यह सब केवल समाजवादी व्यवस्था में ही संभव है।

तलाक की अनिवार्यता :

नारी जाति की पूर्ण स्वतंत्रता के लिये आवश्यक है कि उन्हें तलाक का अधिकार दिया जाये। अभी तक पुरुष को ही यह अधिकार मिला हुआ था कि वह जब चाहे विवाह को भंग कर दे परन्तु समाजवादी व्यवस्था नारी को भी यह अधिकार देती है कि वह पुरुष को तलाक दे दे। क्योंकि तलाक की आज़ादी को तत्काल अमल में लाने की मांग किये बगैर न तो कोई जनवादी हो सकता है और न समाजवादी, क्योंकि इस आज़ादी के अभाव का अर्थ है औरतों का चरम उत्पीड़न।[2] परन्तु औरतों को तलाक की स्वतंत्रता देने का अर्थ

---

1- लेनिन – 'नारी मुक्ति', पृ० 88

2- वही, पृ० 56

पत्नियों को इसके लिये निमन्त्रण देना नहीं है अपितु यह तो पुरुष -प्रताड़ित नारी के लिये वरदान है ।

<u>विवाह का आधार: संयमयुक्त प्रेम :</u>

मार्क्सवादी विचारक विवाह का आधार शुद्धतया प्रेम को ही स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार सम्पत्ति तथा आर्थिक आधार पर विवाह तो पूँजीवादी व्यवस्था में होता है, जबकि समाजवादी व्यवस्था, जिसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा समाप्त हो जाती है, विवाह प्रेम एवं व्यक्तिगत गुणों पर आधारित हो जाता है । इस विषय में एंगेल्स का मत है कि विवाह में पूर्ण स्वतंत्रता केवल उसी समय स्थापित हो सकेगी, जब पूँजीवादी उत्पादन तथा उससे उत्पन्न सम्पत्ति के संबंध मिट जायेंगे और उसके परिणामस्वरूप वे सब गौण आर्थिक कारण भी मिट जायेंगे जो आज भी जीवन साथी के चुनाव पर इतना प्रभाव डालते हैं । तब आपस में प्रेम के सिवा और कोई उद्देश्य विवाह के मामले में काम नहीं करेगा ।[1] परन्तु यहाँ प्रेम से अभिप्राय उस उन्मुक्त अथवा उच्छृंखल प्रेम से नहीं है जो संयम विहीन है । मार्क्सवादी विचारक प्रेम के क्षेत्र में उच्छृंखलता स्वीकार नहीं करते हैं, इसके विपरीत यौन-जीवन में उच्छृंखलता पूँजीवादी विशेषता है । वे ऐसा प्रेम सर्वश्रेष्ठ मानते हैं जिसमें आत्म-संयम एवं अनुशासन हो ।

---

1- एंगेल्स -- 'परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य-सत्ता की उत्पत्ति,' पृ0 109

## मार्क्सवादी व्यवस्था पर सर्वोपभोग्यता का आरोप :

समाजवादी व्यवस्था सामूहिक उत्पादन एवं सामूहिक उपभोग की प्रणाली पर आधारित है । पूंजीवादी, जो कि स्वयं नारी को उत्पादन के औज़ार से अधिक नहीं समझते,अपनी उसी समझ के कारण, इस व्यवस्था पर सर्वोपभोग्यता का आरोप लगाते हैं कि इसमें नारी सामूहिक भोग की वस्तु बन जायेगी, क्योंकि वे जानते हैं कि इस समाज-व्यवस्था में उत्पादन के औज़ारों का सामूहिक उपयोग होगा । इसलिये, स्वभावतः वह इसके अलावा और कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाता कि उस समाज में सभी चीजों की तरह औरतें भी सर्वोपभोग्य हो जायेंगी । वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकता कि दरअसल मकसद यह है कि औरतों की उत्पादन जैसी स्थिति को खत्म कर दिया जाये ।[1] हालांकि स्त्री का वस्तु की भांति उपयोग तो पूंजीवाद में होता है, जहां पूंजीपति मजदूरों की बहू-बेटियों का उपभोग करके उन्हें वेश्यावृत्ति के लिये मजबूर करता है । समाजवादी व्यवस्था में इसीलिये वेश्यावृत्ति के लिये कोई स्थान नहीं है क्योंकि यह व्यवस्था सभी को रोजगार के बराबर अवसर देती है तथा सम्पत्ति को किसी एक के आधिपत्य की वस्तु नहीं रहने देती ।

## प्रेम का सामाजिक आधार :

मार्क्सवादी - विरोधी कुछ विचारकों ने नारी-स्वतंत्रता को लेकर मार्क्सवाद पर यह आक्षेप लगाया है कि इस सिद्धांत पर आधारित समाजवादी समाज-व्यवस्था में अपनी यौन तृष्णा और प्रेम संबंधी आवश्यकता की तृप्ति करना

---

1- मार्क्स – एंगेल्स –'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र', पृ० 58-59

'ग्लास भर पानी' पीने की तरह सीधा-सादा एवं नगण्य काम होगा । परन्तु लेनिन ने इस मत को मार्क्सवाद विरोधी बतलाने के साथ-साथ समाज-विरोधी भी बताया है क्योंकि यौन-जीवन केवल प्रकृति की देन ही नहीं है अपितु वह संस्कृति एवं समाज से भी सम्बद्ध होता है । इस विषय में लेनिन का मत है कि यौन संबंध मात्र सामाजिक अर्थ-व्यवस्था और शारीरिक आवश्यकता का पारस्परिक मेल नहीं है । इन संबंधों में होने वाले परिवर्तनों को समूची विचारधारा के साथ उनके आम रिश्तों से अलग करके सीधे समाज के आर्थिक आधार से जोड़ देना मार्क्सवाद नहीं बुद्धिवाद होगा । प्यास बेशक बुझाई जानी चाहिये । लेकिन क्या कोई सुव्यवस्थित मनुष्य सामान्य परिस्थितियों में गन्दगी में लेटकर पनाले का पानी पिएगा ? क्या वह ऐसे गिलास से पानी तक पिएगा, जिससे दर्जनों लोग पी चुके हों ? लेकिन सामाजिक पक्ष सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । यानी पीना अब दरअसल व्यक्तिगत मामला है । लेकिन प्यार में दो भागीदार होते हैं और एक तीसरा नया जीवन, अस्तित्व में आता है । यहीं सामाजिक हित निहित है । यहीं समष्टि के प्रति कर्त्तव्य की उत्पत्ति होती है ।..[1]

इस संपूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट है कि आदिम युग में जब व्यक्तिगत सम्पत्ति का उदय नहीं हुआ था, नारी को पुरुष के बराबर महत्ता प्रदान की

---

1- लेनिन -'नारी मुक्ति', पृ० 138

जाती थी, परन्तु वैयक्तिक सम्पत्ति की उत्पत्ति के उपरान्त क्रमशः उसकी दशा बद से बदतर होती गई । पूँजीवादी सामन्ती एवं दास – तीनों व्यवस्थाओं में उसकी यही दशा रही । लेकिन समाजवादी व्यवस्था में, जिसमें निजी सम्पत्ति की धारणा समाप्त हो जाती है और संपूर्ण उत्पादन-प्रणाली सामाजिक शक्तियों के हाथ में आ जाती है, नारी फिर से पुरुष के बराबर अधिकार प्राप्त कर सकती है । इस समाज-व्यवस्था में उसे सभी तरह स्वतंत्रता प्रदान की जाती है, ताकि वह पुरुष के मुकाबले में बड़ी हो सके ।

## हिन्दी के मार्क्सवादी लेखकों की नारी विषयक दृष्टि

हिन्दी के प्रमुख प्रगतिशील लेखकों की नारी संबंधी दृष्टि जानने के लिये उनके द्वारा रचित साहित्य का विश्लेषण आवश्यक है । इसलिये हम यहाँ पर प्रमुख साहित्यकारों की कुछ रचनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं ।

### राहुल सांकृत्यायन :

राहुल मूलतः मार्क्सवादी थे, अतः उन्होंने अपने उपन्यासों का आधार ऐतिहासिक भौतिकवादी मान्यता को बनाया है । उन्होंने न केवल तत्युगीन समाज का चित्रण किया है अपितु उसे मार्क्सवादी दृष्टि से परखा भी है । उन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों का विश्लेषण भी इसी आधार पर किया है । उपन्यास 'जीने के लिये' के जेनी और देवराज प्रेम संबंधी सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार नहीं करते । वे विवाहित होते हुये भी प्रेम करते हैं । परन्तु उनका प्रेम शारीरिकता तक सीमित नहीं है अपितु उनके जीवन के विकास का माध्यम है । जेनी प्रेम को यथार्थ के ठोस धरातल पर महसूस करती है और इसीलिये भावुकता

की अपेक्षा कर्मठता का आश्रय लेती है । प्रेम के आदर्श से न तो स्वयं गिरती है और न ही देवराज को भटकने देती है । 'सिंह सेनापति' के माध्यम से राहुल जी गणतंत्रीय व्यवस्था में स्त्री पुरुष संबंधों का विश्लेषण करते हैं कि उस समय गण-समाज में स्त्रियां पुरुषों के समान ही श्रम करती थी और उनके समान ही अधिकार भी प्राप्त करती थी । राजतंत्रीय व्यवस्था में जहां नारी पुरुष के हाथों का खिलौना समझी जाती है वहां गणतंत्रीय व्यवस्था में वह पुरुष के समान ही स्वतंत्र होती थी । ऐतिहासिक उपन्यास 'जय योधेय' में राहुल जी ने बतलाने का प्रयत्न किया है कि उस समय राजतंत्र गणतंत्रीय व्यवस्था पर प्रहार करने लगा था और ज़ोर भी पकड़ रहा था । उन्होंने राजतंत्रीय व्यवस्था में व्याप्त नारी शोषण एवं वेश्यावृत्ति जैसी कुरीतियों की ओर संकेत भी किया है । स्त्री और पुरुष के संबंधों में विषमता के लिये वे आधुनिक विवाह - संस्था एवं व्यक्तिगत सम्पत्ति को ही दोषी ठहराते हैं । सम्पत्ति के अधिकार के कारण ही सामन्त वर्ग जब चाहता है अपनी भोग - पिपासा शान्त करने के लिये नारी क्रय कर लेता है और काम-वासना शान्त करने के अतिरिक्त उसका नारी से कोई प्रयोजन नहीं रहता है । इसीलिये 'मधुर स्वप्न' में वे एक ऐसे गाँव की कल्पना करते हैं, जिसमें सम्पत्ति पर स्त्री और पुरुष दोनों का समान अधिकार होगा । स्त्री की किसी एक की सम्पत्ति न रहेगी और बच्चों पर सारे गाँव का सामूहिक अधिकार स्थापित होगा ।

राहुल जी के उपन्यासों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वे नारी-पुरुष संबंधों की परंपरागत धारणा को उचित नहीं मानते और उसमें प्रभावशाली परिवर्तन चाहते हैं तथा स्वीकार करते हैं कि सामन्ती एवं पूंजीवादी व्यवस्था में

व्याप्त वैषम्य का अंत समाजवादी व्यवस्था में ही हो सकता है ।

नागार्जुन :

नागार्जुन प्रेमचंद की परंपरा से ही जुड़े हुये समाजवादी यथार्थ से प्रेरित उपन्यासकार हैं । उन्होंने ग्राम्यजीवन को प्रमुख रूप से अपनी कथा का केंद्र बिन्दु बनाया और इसके द्वारा गाँवों में होने वाले नारी जाति के साथ व्यभिचार एवं अत्याचार को चित्रित किया है । 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास के द्वारा नागार्जुन ने सामन्ती व्यवस्था में नारी जाति पर होने वाले सभी प्रकार के अत्याचारों का वर्णन किया है । दहेज प्रथा, विधवा का अभिशप्त जीवन, अनमिल विवाह, वेश्यावृत्ति, अवैध बच्चों का जन्म, संयुक्त परिवार का विघटन — आदि नारी जाति से संबंधित सभी प्रकार की कुरीतियों का वर्णन मार्क्सवादी दृष्टि के आधार पर किया गया है । सामन्ती व्यवस्था में नारी ही एक ऐसा प्राणी होती है, जिसका सर्वाधिक शोषण किया जाता है, उसे अल्पायु में विधवा होने पर सारी उम्र चाहे न चाहने पर भी वैधव्य का बोझ ढोना पड़ता है, अनचाहे पुरुष के समक्ष वस्तु समर्पित होना पड़ता है – रतिनाथ की चाची गौरी को इन सब यातनाओं से उम्र भर गुजरना पड़ता है । इस पुरुष प्रधान समाज में नारी का भोग्या के अतिरिक्त कोई अन्य रूप स्वीकृत नहीं होता । गौरी के अतिरिक्त दम्मो और सुशीला को भी इसी प्रकार की यातनाओं को भोगना पड़ता है । नागार्जुन ने विधवा गौरी के माध्यम से उच्चजाति के कुलीन ब्राह्मणों के धार्मिक आडम्बरों एवं रूढ़िवादिता पर प्रहार करने का सफल प्रयत्न किया है । जमींदारों द्वारा निम्न वर्ग की अबलाओं पर किये जाने वाले अत्याचार एवं शोषण

का चित्रण उन्होंने 'बलचनमा' में किया है । जमींदार भूमिहीन किसानों का दोहरा शोषण करते हैं । एक तो उनसे बेगार लेते हैं और मजदूरी नहीं देते और दूसरी ओर उनकी बहू-बेटियों का बलपूर्वक शोषण करते हैं । किसान उसके विरुद्ध आवाज़ भी नहीं उठा सकते और यदि कुछ कहते भी हैं तो उसकी सुनवाई नहीं होती, इसके विपरीत उन्हें जमींदार के कोप का भाजन बनना पड़ता है । जमींदार रैचनी के साथ बलात्कार करता है, उसकी माँ की पिटाई भी करवाता है और उसके भाई बलचनमा को भी दण्डित करता है । 'नई पौध' में भी नागार्जुन ने सामन्ती व्यवस्था में नारी की दयनीय स्थिति को चित्रित किया है । उपन्यास में अनमेल विवाह की समस्या उठाई गई है । नागार्जुन ने इस समस्या का सुधारवादी या आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत करने की अपेक्षा नई पीढ़ी द्वारा इसका विरोध कराकर समाधान प्रस्तुत किया है । विसेसरी का नाना उसका विवाह एक वयोवृद्ध किन्तु धनी चतुरी चौधरी से करना चाहता है किन्तु गाँव के नवयुवकों के प्रयत्न इस दुष्कर्म को निष्फल कर देते हैं । 'वरुण के बेटे' में उपन्यासकार ने मछुओं के जीवन, व्यवसाय एवं रीतिरिवाजों का चित्रण किया है । उपन्यास में नागार्जुन ने मधुरी एवं मंगल की स्वाभाविक प्रेम दिखा कर सामंती नैतिकता एवं रूढ़िगत विवाह को चुनौती दी है । मधुरी मार्क्सवादी चेतना से सम्पन्न नारी के रूप में सामने आती है । वह विवाह के पश्चात् भी मंगल को प्रेम करती है किन्तु उसे अपनी पत्नी के प्रति वफ़ादार होने के लिये कहती है । वह सजग नारी है अतः विवाह के पश्चात् कायर पति से समझौता न कर पति पर, विवश होकर पातिव्रत धर्म निभाने की बजाये पतिगृह छोड़कर अपनी माँ के घर लौट आती है और नारी जाति की मुक्ति की ओर संकेत करती है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में नारी शोषण से संबंधित विभिन्न समस्याओं को उठाते हुये समाजवादी विचारधारा के आधार पर उनका यथार्थपूर्ण समाधान दिया है।

भैरवप्रसाद गुप्त :

गुप्त जी भी नागार्जुन की ही भांति ऐसे मार्क्सवादी लेखक हैं, जिन्होंने ग्रामीण जीवन को ही अपने उपन्यासों का कथा-केंद्र बनाया है। उनके उपन्यासों में शोषक-वर्ग के प्रति गहरा रोष मिलता है। उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में ही स्त्री-पुरुष के संबंधों का चित्रण किया है। 'मशाल' उनका प्रगतिशील चेतना सम्पन्न उपन्यास है। इसमें उन्होंने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि पूँजीवादी व्यवस्था में नारी को आर्थिक रूप से पराधीन होने के कारण, पुरुष के इशारों पर चलना पड़ता है। यदि कहीं वह उससे बचने का प्रयास भी करती है, तो और गहरे गर्त में जा गिरती है। सकीना अपना सतीत्व बचाने के चक्कर में वेश्याघर में जा फंसती है और आजीविका के लिये उसे अपना शरीर बेचना पड़ता है। कदम-कदम पर उसे भोग्या बनना पड़ता है। 'गंगा मैया' में उन्होंने पातिव्रत धर्म, विधवा समस्या के द्वारा नारी की विवशता का वर्णन किया है। गोपी की भाभी अपने संस्कारों के कारण विधवा होने पर बलात् पातिव्रत धर्म ढोती रहती है, अल्पायु में ही विधवा होने पर जबरदस्ती अपनी भावनाओं पर अंकुश लगाये रहती है। गुप्त जी ने गोपी का भाभी से विवाह करवाकर परंपरागत रूढ़ियों एवं मान्यताओं पर जबरदस्त प्रहार किया है। 'जंजीरें और नया आदमी' में भैरव जी ने सामंती व्यवस्था में संपूर्ण नारी जाति की शोचनीय अवस्था का चित्रण किया है। चाहे वह रानी हो अथवा उसकी लौंडियां-

जमींदार या सामंत उनका प्रयोग केवल बिस्तर पर ही करता है । 'सती मैया का चौरा' में भी बलमतिया, मुनेसरी आदि नारियाँ पेट पालने के लिये अपने शरीर का सौदा करती हैं ।

गुप्त जी के उपन्यासों के विश्लेषण से पता चलता है कि वे नारी की सामाजिक स्थिति की गिरावट का कारण उसकी आर्थिक परतंत्रता को ही स्वीकार करते हैं । वे मानते हैं कि जब तक नारी रूढ़ियों में बंधी रहेगी, तब तक वह स्वतंत्र नहीं हो सकेगी । इसीलिये 'गंगा मैया' में वे गोपी और भाभी का विवाह करवा कर परंपरागत रूढ़ियों को चुनौती देते हैं ।

रांगेय राघव :

राघव जी ने यशपाल की ही भाँति मध्यवर्गीय जीवन को चित्रित करते हुये अपनी समाजवादी चेतना को ही मुखर किया है । मार्क्सवादी उपन्यासकार होने के नाते वे नारी के शोषण एवं उसकी दासता का कारण सामाजिक क्षेत्र में आर्थिक वैषम्य को ही स्वीकार करते हैं । अपने उपन्यासों में उन्होंने धार्मिक, सामाजिक बाह्याडम्बरों का खुलकर विरोध किया है । 'घरौंदे' में उन्होंने मध्यवर्गीय जीवन की अनेक विडम्बनाओं का चित्रण किया है । प्रो० मिश्रा अपनी पदोन्नति के लिये अपनी पुत्रियों का कौमार्य बेचता है । पूँजीवादी व्यवस्था में धन एवं मुनाफा ही सब कुछ माना जाने के कारण मिश्रा का यह कदम सामयिक व्यवस्था के अनुरूप ही प्रतीत होता है । इस व्यवस्था में नारी का सामाजिक उत्पादन में कोई महत्व न होने के कारण वह पुरुष पर आश्रित रहती है, इसीलिये पुरुष स्वामी बन बैठता है और नारी को दासी बना देता है । विवाह के लिये उसकी पसन्द - नापसंद नहीं देखी जाती । उसे अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिये उसके प्रति समर्पित होना पड़ता है और सतीत्व के बदले में उसे

रोजमर्रा की आवश्यक वस्तुयें प्राप्त होती रहती हैं । नारी की इसी अवस्था को रेखांकित करती हुई घरौंदा की लीला कहती है कि सामंती राज्य की स्त्री एक वेश्या है, घर की बेजान चीजों की स्वामिनी और जीवित मनुष्य की दासी ।''[1] उषा एक जागरूक नारी है, जो स्त्री-पुरुष में समानाधिकार चाहती है और रूढ़िगत मान्यताओं का विरोध करती है । 'विषाद मठ', सभ्य समाज के ठेकेदारों द्वारा निम्नवर्ग की अबला नारियों के साथ किये जाने वाले व्यभिचार का सफल निदर्शन करता है । अकाल के कारण भूखों मरने की नौबत आने पर इन्दु, शबनम, साधना आदि नारियों को पेट की आग बुझाने के लिये धनी, कुलीन लेकिन चरित्रहीन पुरुषों की वासना की आग बुझानी पड़ती है । इसी देह विक्रय व्यापार के परिणामस्वरूप इन्दु को भयंकर यौन-बीमारी हो जाती है, जिसके कारण वह तड़प-तड़प कर मरती है । जहाँ निर्धन नारियों को पेट भरने के लिये शरीर-व्यापार करना पड़ता है वहाँ उच्च वर्ग की नारियाँ अपनी वासना की पूर्ति के लिये किस किसी पुरुष के साथ भी संबंध जोड़ लेती हैं । 'मुर्दों का टीला' में रांगेय राघव ने सभ्यता से भी पूर्व गण-व्यवस्था वाले पितृ सत्ताक समाज में दास-दासियों एवं नारियों के नारकीय जीवन का चित्रण किया है । सामंती समाज का मनुष्य नारी को जब तक भोगता है और उसके बाद पशु की भाँति फेंक देता है । वेणा को दासी होने के कारण और चन्द्रा को धनहीन होने के कारण अनचाहे समर्पित होना पड़ता है । नीलूफर वर्ग-चेतना पूर्ण नारी है । वर्गहित की लड़ाई में ही वह अपने प्राण त्याग देती है । 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में भी राघव जी ने सामंतों के आर्थिक शोषण एवं नारियों के साथ खिलवाड़ को चित्रित किया है । जमींदार ही नहीं पुलिस भी उनके

---

1- रांगेय xk राघव -- ' घरौंदा', पृ0 154

साथ मिलकर निरीह नारियों का सतीत्व लूटते हैं । उपन्यासकार ने लुराम के माध्यम से यौन-उन्मुक्तता का विरोध भी किया है ।

कुल मिलाकर रांगेय राघव जी के उपन्यासों से यही तथ्य निकलता है कि ये समाजवादी दृष्टि के कारण नारी और पुरुष की स्थिति में वैषम्य का कारण पूंजीवादी एवं सामंतवादी व्यवस्था को मानते हैं क्योंकि इनके कारण ही सारी सम्पत्ति कुछ गिने चुने लोगों के हाथ में चली जाती है और ये नारी का जी -भर कर शोषण करते हैं ।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि सभीप्रगतिशील लेखक नारी की शोचनीय दशा को आर्थिक वैषम्य का परिणाम ही स्वीकार करते हैं । क्योंकि संपूर्ण पूंजी कुछ ही लोगों के हाथों में आ जाने के कारण उन पर निर्भर रहने वालों का और विशेषतः नारी-जाति का जीवन नारकीय हो जाता है । आर्थिक कारणों के परिणामस्वरूप ही नारी वेश्यावृत्ति जैसे घिनौने कर्म को अपनाने के लिये तत्पर होती है । धार्मिक रूढ़ियों एवं सामाजिक आडम्बरों की सहायता से भी पुरुष, नारी को तरह-तरह से दबाता रहता है । इस सब का विरोध करने के कारण ही मार्क्सवादी उपन्यासकारों --- राहुल जी ने 'जीने के लिये' में जेनी और देवराज, नागार्जुन ने 'जमना के बेटे' में मधुरी और मंगल और गुप्त जी ने 'गंगा मैया' में गोपी और भाभी आदि पात्रों के परिपक्व एवं संयमशील संबंधों की रचना की है ।

---

## अध्याय दो

## यशपाल की नारी विषयक दृष्टि

## अध्याय-दो

## यशपाल की नारी विषयक दृष्टि

यशपाल हिन्दी के उन गिने-चुने साहित्यकारों में से एक है, जिन्होंने अपनी साहित्यिक रचनाओं द्वारा मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि को प्रस्तुत किया है । यशपाल पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव रहा है । उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया था, जिसका प्रतिफलन उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है । मार्क्सवाद के प्रभाव के फलस्वरूप ही उन्होंने स्त्री-पुरुष संबंधों की परम्परा की लीक से हट कर नई दृष्टि से देखने का प्रयास किया । उनका अधिकतर नारी विषयक चिन्तन मार्क्सवाद द्वारा ही प्रभावित है । इसी कारण उन्होंने विवाह संबंधी रूढ़िगत मान्यताओं, नारी की पराधीनता की मान्यताओं, धार्मिक परम्परागत धारणाओं, एवं नारी की आर्थिक परावलम्बता की मान्यताओं का विरोध करके नारी को पूँजीवादी समाज-व्यवस्था द्वारा बनायी गयी बेड़ियों से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न किया । इस प्रकार परम्परागत नारी से भिन्न एक स्वतन्त्र अस्तित्ववाली, स्वतः-सम्पन्न नारी की कल्पना की ।

### प्राचीन मान्यताओं का खंडन-i) सतीप्रथा :

सामाजिक मूल्य परिवर्तनशील है । पातिव्रत धर्म तथा प्रेमभावना केवल परिस्थिति-सापेक्ष है, शाश्वत सत्य नहीं । जो सामाजिक एवं नैतिक मूल्य व्यावहारिक एवं बुद्धिगम्य नहीं है, इस युग के लिये वे एक दम व्यर्थ तथा सर्वथा त्याज्य हैं, इसलिये उन्हें बदलने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये । यशपाल भी मानते हैं कि अतीतकालीन मान्यतायें एवं आदर्श आज बुद्धिगम्य एवं

व्यावहारिक नहीं है । आज के समता के युग में ये सब अपना मूल्य तो खो बैठे ही हैं, साथ ही अन्यायपूर्ण भी प्रतीत होते हैं । अतीत की एक मान्यता चितारोहण या सतीप्रथा के बारे में वे कहते हैं कि '' मेरे लिये यह विश्वास कर पाना कठिन है कि आज का समाज अतीत की सभी मान्यताओं में भावात्मक और रागात्मक सौंदर्य की अनुभूति पा सकता है । मैं आज पति के वियोग में पत्नी के लिए चितारोहण में सौंदर्य नहीं विभीषिका ही अनुभव करता हूँ । मैं अतीत में भी किसी पति के पत्नी के वियोग में चिता पर चढ़ने के लिए आकुल होने के उदाहरण नहीं देख पाता तो स्त्री-पुरुष की समता के विचार से इस युग में मुझे पत्नी के सती होने के आदर्श के प्रति रागात्मक सहानुभूति उत्पन्न करना भीषण अन्याय ही जान पड़ता है । मैं राजा हरिश्चन्द्र द्वारा सत्य शोध के लिए पत्नी को बाज़ार में बेच डालने की कर्त्तव्य - परायणता के लिए भी आदर की अनुभूति उत्पन्न नहीं कर सकता, उसे धर्म नहीं समझ सकता, ''[1] क्योंकि नारी कोई रूखा विहीन वस्तु या पशु नहीं है, जिसे जहाँ चाहे बेच दिया जाये, वह तो पुरुष की तरह ही एक मनुष्य है, जिसे अपने विषय में फैसला करने का अधिकार है ।

(f) कन्यादान की धारणा :

भारतीय हिन्दू समाज में पूँजीवादी प्रवृत्तियों का ही बोलबाला रहा है, जिनके कारण नारी को अपने विवाह के समय दान में दिया जाता रहा है, यह प्रथा कन्यादान कहलाती है । इस रूढ़िवादी धारणा के कारण नारी की दशा अत्यन्त दयनीय प्राणी के समान हो गई क्योंकि उसे मनुष्य होते हुये भी गुलामों और पशुओं की तरह दान में दिया जाता है । ऐसी स्थिति में वह स्वतन्त्र व्यक्ति नहीं बन सकती । यशपाल भी मानते हैं कि दान या मोल-तोल कभी स्वतंत्र व्यक्तियों का नहीं किया जा सकता । दान किया जा सकता है केवल पशुओं और गुलामों का । हमारी हिन्दू संस्कृति में कन्यादान महान पुण्य और पवित्र कार्य

1- यशपाल- जो बेचा (भूमिका), पृ० 6

...जाता था। जिस व्यक्ति को दान में दिया जा सकता है, घर में उसका क्या अधिकार हो सकता है ? या जो व्यक्ति दान के रूप में किसी परिवार में आयेगा, उसकी स्थिति घर के लोगों के समान किस प्रकार हो सकेगी ? और यह सत्य भी है कि क्योंकि दान में दी जाने वाली या दान स्वरूप प्राप्त वस्तु की इच्छा का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। यही नहीं नारी के शोषण को बरकरार रखने के लिये पूंजीवादी हिन्दू समाज ने कन्यादान को एक प्रकार से अनिवार्य ही कर दिया और सामान्य जन के दिमाग में यह बात जमा दी गई कि कन्यादान न करना ऐसा महापाप है, जिसका कोई प्रायश्चित नहीं। अतः "ऊंची जातिकुल के हीनवित्त परिवार, युवती कुमारी कन्याओं के दान के धार्मिक कर्तव्य की चिन्ता से व्याकुल ही रहते थे। पैंतालीस-पचास-साठ के प्रौढ़ वर को सोलह-सत्रह की कुमारी कन्या का दान धर्मशास्त्र की दृष्टि से वर्जित नहीं। ऐसी विवशता को बिरादरी भी दण्डनीय नहीं समझती। कन्या का दान न कर पाने की चूक और अक्षमता को बिरादरी क्षमा न कर सकती थी। इस महापाप का प्रायश्चित न था।"[1] इस प्रकार के सामाजिक दबाव के कारण ही माता-पिता सुपात्र-कुपात्र तथा कन्या की इच्छा का ध्यान किये बिना ही जल्दी से जल्दी कन्यादान कर कन्या से छुटकारा पाने की कोशिश करते रहे हैं।

नारी की पराधीनता की प्रतीक कन्यादान की इस मान्यता से स्पष्ट है कि नारी और विशेषकर हिन्दू-नारी विवाह के मामले में किंचित भी स्वतंत्र नहीं थी। प्राचीन काल में जो स्वयम्वर की परंपरा प्रचलित थी, ऊपरी तौर पर

---

1- यशपाल - 'मेरी तेरी उसकी बात', पृ0 36

वह नारी की स्वतंत्रता की द्योतक प्रतीत होती है परन्तु वास्तव में वह परंपरा नारी को नहीं अपितु पुरुष को ही स्वतंत्रता प्रदान करती थी। इसी से सहमति प्रकट करते हुये यशपाल कहते हैं — ''..... हिन्दुओं के यहाँ स्त्री को कितनी स्वतन्त्रता है, यह तो इसी बात से प्रकट है कि विवाह को कन्यादान कहा जाता है। जिस वस्तु का दान कर दिया जाता है, उसकी इच्छा या अनिच्छा का, उसकी स्वतंत्रता का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। स्वयम्वर किया जाता होगा, परन्तु वह स्त्री को स्वतंत्रता देने के लिये नहीं, इसलिये कि और पुरुष आपस में औरत के लिये झगड़ें नहीं।''[1] और कुछेक अपवादों को छोड़कर इतिहास से भी इसी बात की पुष्टि मिलती है। सीता और राम का विवाह इसी प्रकार का स्वयम्वर था।

(iii) पतिव्रता :

समय-समय पर नारी के लिए बनाये गये ये मानसिक बंधन एवं नैतिक धारणायें सामंती एवं पूंजीवादी संस्कृति की देन हैं। नारी की दासता को जबरन सतीत्व एवं पतिपरायणता का आदर्शवादी नाम दिया जाता रहा है। साथ ही पातिव्रता एवं सतीत्व की मर्यादा का ईजाद भी स्त्री पर पुरुष का एकछत्र आधिपत्य बनाये रखने के लिये पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा किया गया ताकि नारी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित न कर सके। पतिव्रता नारी को संकीर्ण सामंती एवं पूंजीवादी नैतिकता और पिछड़ेपन का प्रतीक मानने के कारण आत्मसम्मान और व्यक्तित्व शून्य नारी की कल्पना भी यशपाल को सह्य नहीं। इसलिये वे पुरुष

---

1- यशपाल — 'चक्कर क्लब', पृ० 78

के शिकौं में इस का व्यक्तित्वहीन बनाने वाली प्रेम की परम्परागत मान्यता को परिवर्तित करने की इच्छा रखते हैं । प्रेम के आदर्शों और उन्हें चरितार्थ करने की प्रवृत्तियों में उन्हें आज अतीत से बहुत अंतर दिखाई देता है । क्योंकि आज यदि कोई शकुन्तला किसी दुष्यन्त द्वारा भुला दी जाने और अपमानित की जाने पर भी फिर उसी पति के चरणों का आश्रय चाहती है, तो वह नारी यशपाल को मानवी आत्मसम्मान से शून्य अत्यन्त हेय नारी ही जान पड़ती है ।[1]

पार्टी कामरेड की 'गीता' उनके इन्हीं विचारों का वहन करती हुई मानती है कि इस देश में बिना जाने बूझे पुरुष को पति के रूप में स्वीकार कर लेना क्या स्त्री का आत्मसम्मान है ? कोई स्त्री विवश हो वेश्या बनती है और कोई विवश हो पतिव्रता ।[2] अर्थात् पातिव्रत तथा वेश्यावृत्ति – दोनों ही के पीछे नारी की व्यक्तित्वहीनता, पराधीनता, विवशता, परवशता का भाव छिपा रहता है तथा दोनों ही प्रकार की स्त्रियाँ अपनी इच्छानुसार चलने में स्वतंत्र नहीं होती ।

<u>नारी की व्यक्तित्वशून्यता :</u>

सभ्यता के प्रारंभ से ही सभी वर्गों - श्रेणियों की नारियाँ पुरुषों के आधीन रही हैं । अतः यशपाल केवल मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग की नारियों को ही व्यक्तित्व शून्य नहीं मानते, अपितु पूंजी पति वर्ग की स्त्रियों को भी सर्वथा स्वतंत्रता रहित तथा व्यक्तित्व हीन स्वीकार करते हैं । वे कहते हैं कि इस वर्ग की स्त्रियाँ यदि छतरी और बटुआ हाथ में लेकर मनमानी साड़ियाँ और ब्लाउज

---

1- यशपाल –'श्री भैरवी' (भूमिका), पृ० 7

2- यशपाल – 'पार्टी कामरेड'–पृ० 33

खरीदने की स्वतन्त्रता पा जाती है तो अपने-आपको स्वतंत्र समझने लगती है परन्तु यदि वे स्वतन्त्रता से अपना घर बसाना चाहें या स्वतन्त्रता से सन्तान पैदा करना चाहें तो क्या वे स्वतंत्र हैं ? इस दृष्टि से इस वर्ग की स्त्रियाँ किंचित भी स्वतन्त्र नहीं हैं अपितु अस्तित्वशून्य एवं व्यक्तित्व रहित होने के कारण यशपाल इन्हें भी शोषित ही स्वीकार करते हैं — '' जिस व्यक्ति का अपना कोई अस्तित्व नहीं उससे अधिक शोषित कौन होगा ? अगर यह श्रीमतियाँ अपनी इस स्थिति पर गर्व करती हैं तो यह उनकी मनुष्यत्वहीन, व्यक्तित्वहीन अत्यन्त गिरी हुई मानसिक अवस्था का परिणाम है ।''[1]

इस मार्क्सवादी दृष्टिकोण के कारण यशपाल के उपन्यासों के अधिकतर नारी-पात्र प्राचीन परम्परा से हटकर अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व, अस्तित्व रखते हैं । दादा कामरेड की 'शैल', दिव्या की 'दिव्या', पार्टी कामरेड की 'गीता', मनुष्य के रूप की 'मनोरमा', 'झूठा-सच' की 'कनक', एवं 'तारा','मेरी तेरी उसकी बात की 'उषा' आदि स्त्री-पात्र विषम तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने व्यक्तित्व को समाप्त नहीं होने देते और उसे बनाये रखने के लिये आद्योपान्त संघर्षरत रहते हैं । स्वतंत्र - व्यक्तित्व को बनाये रखने के प्रयास में ही कनकपुरी और मनोरमा - पुतलीबाला में तलाक होता है । यशपाल के नारी-पात्र पुरुष की सम्पत्ति बनकर जीवन-यापन करना किसी भी कीमत पर सहन नहीं करते ।

---

1- यशपाल – 'बात बात में बात ', पृ० 56

यशपाल के प्रगतिशील विचारों का वहन करने वाले कुछ पुरुष-पात्र भी व्यक्तित्वहीन नारियों को न तो पसंद करते हैं और न ही उन्हें इस रूप में स्वीकार करना चाहते हैं । देशद्रोही में चन्दा के रूप में यशपाल स्वीकार करते हैं कि मनुष्य केवल रूप पर जीवित नहीं रह सकता । नर्गिस मनुष्यत्वहीन नारी थी । वह व्यक्तित्वहीन भोग का साधन मात्र थी । भोग की कोई भी वस्तु सदा एक सी रुचिकर नहीं रह सकती ।[1] इसीलिये खन्ना नर्गिस से कभी भी मन से बंध नहीं पाता और मौका पाते ही निकल भागता है । चन्दा में स्वतंत्र व्यक्तित्व की झलक पाकर ही उसका आदर करता है । वह नारी के लिये पुरुष की वंश रक्षा के लिए सन्तानोत्पत्ति का साधन बनने के स्थान पर अपने व्यक्तित्व को बनाये रखने को अधिक आवश्यक मानते हैं ।

परन्तु पूँजीवादी इसके विपरीत हमेशा से ही नारी के व्यक्तित्व को दबाता रहा है, ताकि वह उस पर शासन कर सके, उसका शोषण कर सके, अपनी इच्छा के अनुसार उसे नचा सके । वह उसे विवाह और प्रेम के क्षेत्र में किसी प्रकार की भी स्वतंत्रता नहीं देता, इसके लिए नारी को अपनी दया पर रहने के लिये छोड़ देता है । पुरुष स्त्री को स्वयं प्रेम करने का अधिकार नहीं देना चाहता । इसका अर्थ है हमारा समाज स्त्री को स्वतः प्रेम करने का अधिकार नहीं देना चाहता, वह स्त्री को सामन्ती युग की तरह केवल भोग और उपयोग की वस्तु समझता है ।"[2] सामंती तथा पूँजीवादी-दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं में

---

1- यशपाल -'देशद्रोही', पृ० 112

2- यशपाल -'फूलों का कुर्ता', पृ० 47

नारी को मनुष्य के रूप में नहीं अपितु वस्तु या कमाडिटी के रूप में देखा जाता है, इसीलिये उसे समानता का अधिकार नहीं दिया जाता ।

स्त्री को व्यक्तिगत सम्पत्ति या वस्तु मानने वाले पूँजीवादी समाज में यशपाल ने तीन प्रकार की स्त्री-श्रेणियाँ स्वीकार की हैं । यशपाल मानते हैं कि आर्थिक आधार पर ये श्रेणियाँ अलग- अलग मानी जा सकती हैं किन्तु शोषण एवं व्यक्तित्व हीनता के स्तर पर पूरी नारी जाति एक ही श्रेणी में आती है । उनके अनुसार — ''एक किसान मजदूर श्रेणी की औरतें हैं, जो पति के बराबर ही काम करती हैं और पति की गुलामी करती हैं घर में । दूसरी हैं सफेद पोश लोगों की औरतें । ये लोग घर का वह काम करती हैं, जिसे आठ-दस रूपये महावार का नौकर बखूबी कर सकता है । हाँ वंशधर पैदा करने का काम अतिरिक्त जरूर है ।..... तीसरी हैं अमीर श्रेणी की औरतें । पुरुष के मन बहलाव और सन्तान प्रसव करने के अतिरिक्त ये कुछ नहीं करतीं । अमीर लोग इन्हें बैठा-बैठा कर अपने शौक और शान के लिये खिलाया करते हैं, जैसे तोता, मैना या गोद के पालतू कुत्ते को खिलाया जाता है ।''[1] पूँजीवाद इन तीनों में से किसी भी श्रेणी को कोई स्वतंत्रता प्रदान नहीं करता । यहाँ तक कि उसके अस्तित्व की स्वतंत्रता देना तो एक तरफ उसे पूरी तरह से पुरुष की छाया में समेट कर रख देता है । इस संस्कृति में नारी का गौरव उसके अपने अस्तित्व में नहीं है । उसका गौरव तो किसी की श्रीमती बन जाने में ही सीमित है । वह किसी की बेटी या माँ मात्र ही है । स्वयं में कुछ भी नहीं है । इस समाज में नारी को उसके अपने नाम से पुकारना भी उसका अपमान है । उसे किसी

---

1- यशपाल —2 'दादा कामरेड', पृ0 90

की श्रीमती, माँ या बहन बनकर ही सम्मान दिया जा सकता है। नारी यदि कहीं अपने व्यक्तित्व को प्रकट करे, तो वह उसकी निर्लज्जता है। वह पुरुष की छाया में छिपी रहे, तो वह उसका सम्मान है। जहाँ कहीं वह अपना अलग अस्तित्व बनाने की चेष्टा करती है, बदनामी ही उसके साथ लगती है। पूँजीवादी व्यवस्था ने ऐसी मान्यतायें नारी को पुरुष के पंजे तले दबाये रखने के लिये ही बनाई हैं और इसकी पुष्टि के लिये समय-समय पर वह धर्म का आश्रय भी लेता रहा है। झूठा-सच में 'हाफिज जी' के अनुसार –''जनूनि-हलाही है जवान औरत का निकाह लाजमी है। खुदा ने औरत को फरिश्ता -औरत बनाया है। लेकिन इबलिस (शैतान) उसके दिमाग पर गालिब रहता है, इसलिये शरह में हुक्म है कि वह मर्द की हिफाजत में रहे – बचपन में बाप की हिफाजत, जवानी में शौहर की और बुढ़ापे में अपने बेटों की.... ।''[1] इस प्रकार यह समाज नारी को कभी भी बालिग या स्वतः सम्पन्न नहीं होने देता। धार्मिक रूढ़ियों का सहारा लेकर वह किसी न किसी रूप में उसे पुरुष का आश्रय ग्रहण करने के लिए विवश कर देता है और स्वतंत्र अस्तित्व बनाने का अवसर ही उसे प्रदान नहीं करता।

इस तरह धर्म और ईश्वर के नाम के बल पर वह नारी को अपने भोग की सामग्री बनाये रखता है। ईश्वर की प्रेरणा और ईश्वर के नाम पर पाये अधिकार से ही शोषक वर्ग, अपने स्वार्थ के लिये समाज में विषमता पैदा

---

1- यशपाल –'झूठा सच (वतन और देश)', पृ० 436

करता है और श्रमिक वर्ग और स्त्रियों को अपने भोग और सेवा का साधन बनाये रखता है । धार्मिक क्षेत्र में कट्टर लोग स्त्री को मात्र उपयोग और उपभोग की वस्तु समझते हैं, इस विषय में मेरी तेरी उसकी बात में डा० रज़ा बताता है कि मज़हबी लोग औरत को ऐट्रिन समझते हैं । सेहत और आराम के लिए ज़रूरी । उसे एहतियात से साफ़ रखना ज़रूरी लेकिन चीज़ गन्दी है ।[1] स्पष्ट है कि नारी को किस रूप में ग्रहण किया जाता रहा है । इसके विपरीत मार्क्सवादी चेतना से सम्पन्न, यशपाल की प्रमुख नारी पात्रा 'शैल' किसी भी स्तर पर पुरुष के शोषण को स्वीकार नहीं करती । अतः वह किसी को समर्पण करने या किसी के समर्पण को स्वीकार करना उचित नहीं समझती क्योंकि समर्पण एक प्रकार से स्वाधीनता-स्वीकृति सूचक है । वह कहती है ''किसी की हो रहने या किसी को अपना बना लेने का मतलब क्या ? किसी को अपना बना लेने का मतलब भी तो किसी का हो जाना ही है -- जहाँ स्त्री का अपना कुछ शेष नहीं रह जाता । यदि स्त्री को किसी न किसी की बन कर ही रहना है तो उसकी स्वतंत्रता का अर्थ क्या हुआ ? स्वतंत्रता शायद इसी बात की है कि स्त्री एक बार अपना मालिक चुन ले, परन्तु गुलाम उसे जरूरी बनना है ।''[2] इस प्रकार शैल अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्र सत्ता के प्रति पूर्ण सजग नारी के रूप में उपस्थित होती है । वह

---

1- यशपाल -- 'मेरी तेरी उसकी बात'--पृ० 252

2- यशपाल --'दादा कामरेड'--पृ० 28

किसी भी ऐसे पुरुष को स्वीकार नहीं करती जो कि उसे अधिकार सीमित कर देने का प्रयास करता है । इसीलिये वह महेन्द्र रावर्ट आदि से अपना संबंध-विच्छेद कर लेती है । यशपाल का यह नारी-पात्र पुरुष के जेब में रूमाल की तरह अर्थात् उसके उपयोग मात्र की वस्तु बनकर रहना स्वीकार नहीं करता, क्योंकि इससे उसका अपना व्यक्तिगत अस्तित्व समाप्त हो जाता है । इसीलिये शैल यशोदा से कहती है —' 'पुरुषों के सन्देह और बेमतलब नाराज़गी की बहुत परवाह करने से या तो केवल उनके जेब में रूमाल की तरह रहो, स्वयं सोचना, अपने जीवन की बात करना छोड़ दो या फिर उन्हें सोचने दो..... अब तक स्त्रियाँ रही हैं मर्दों के व्यक्तिगत इस्तेमाल की चीज़ । यदि वे अपने व्यक्तित्व को अलग से खड़ा करने की ज़रा सी चेष्टा करेंगी तो उँगली ज़रूर उठेगी, लेकिन थोड़े दिन बाद नहीं ।..... पुरुषों को सहने का अभ्यास होना चाहिये कि स्त्रियाँ भी अपना व्यक्तित्व रखती हैं ।''[1]

इस प्रकार मार्क्सवादी दृष्टि नारी को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करके उसे इन परंपरागत रूढ़ियों से बाहर खींच निकालने में सहायता देती है ।

**नारी के सम्मान के पीछे पुरुष की आत्म-तुष्टि :**

सामन्तवादी एवं पूँजीवादी समाज में पुरुष सदियों से नारी पर शासन करता आया है, परिणामतः नारी जीवनभर पुरुष के अधीन रहती है । पुरुष नारीत्व या मातृत्व का सम्मान इसलिये करता है क्योंकि वह उसके लिये उपयोगी सिद्ध होती है । स्त्री ही उसे उत्पन्न करती है, बड़ा होने तक माता के रूप में उसका पालन-पोषण करती है, वृद्धावस्था तक पत्नी के रूप में

---

1- यशपाल-'दादा कामरेड', पृ0 107

उसकी अनुगामिनी बनकर उसकी सभी भौतिक आवश्यकताओं को अंत तक पूर्ण करती रहती है। पुरुष नारी को पूजा का पात्र भी इसीलिये बनाता है ताकि उसे पुरुष पुजारी की सम्पत्ति 'मंदिर' में बन्द किया जा सके। यशपाल मानते हैं कि 'स्त्री का स्थान माता का ज़रूर है, वह पूजा की भी पात्र है, परन्तु पूजा के पात्र जितने देवी-देवता होते हैं, वे सब मंदिर में बन्द रहते हैं और चाबी रहती है, पुजारी की जेब में। घर के मंदिर में स्त्री पूजा की प्रतिमा है ज़रूर, परन्तु मंदिर का मालिक पुजारी तो पुरुष ही है। इसलिये उसी का अधिकार और शासन चलना ज़रूरी है।'[1] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि नारी का सम्मान भी पुरुष अपने आत्माभिमान एवं संतोष की पूर्ति के लिये करता है। और नारी उसके उपभोग का पदार्थ मात्र बन जाती है। स्त्री के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर तथा अपने प्रेम में उसे चिरमग्न तथा विह्वल देखकर वह अपने अहम् की तुष्टि ही करता है।

इसी निरर्थक आत्माभिमान की पूर्ति के लिये पुरुष स्त्री से यह अपेक्षा करता है कि वह उसके जीवनकाल पर्यन्त तो केवल उसकी बनकर रहे ही, उसकी मृत्योपरान्त भी उसके नाम या उसकी स्मृति से चिपक कर अपना शेष जीवन व्यतीत कर दे। स्त्री पति को खोकर उसकी स्मृति के प्रति भी वफ़ादार बनी रहे, यह पुरुष का गर्व है। मर जाने के बाद पुरुष को गर्व से संतोष भी नहीं मिलता, परन्तु स्त्री का जीवन और सर्वस्व भस्म हो जाता है। स्त्री के जीवन और सर्वस्व का मूल्य पुरुष के निरर्थक गर्व से भी गया बीता

---

1- यशपाल -'चक्कर-क्लब'- पृ0 73

है ।[1] यही कारण है कि यदि स्त्री अपने पति के नाम पर पूरी जिन्दगी बिता देती है तो ठीक है, और अगर वह दूसरा विवाह कर लेती है, तो हमारा समाज उसे पतित या कुलटा कहता है और उसके दूसरे विवाह को मान्यता नहीं देता ।

प्रेम के क्षेत्र में पुरुष पर निर्भरता :

ऐसे पुरुष प्रधान समाज में प्रेम के विषय में भी नारी पुरुष की दया पर आश्रित रहती है । यह पुरुष की इच्छा पर ही निर्भर करता है कि स्त्री को प्रेम की अथवा दुत्कार दे । प्रेम पर मानों पुरुष का एकाधिकार रहता है ।"स्त्री के चाहने पर ही तो पुरुष उसके लिये सब कुछ, अपना प्राण भी निछावर करता है ।..... यही तो प्रेम है ।..... पुरुष पर ही निर्भर करता है कि वह अपने प्रेम को कैसे चरितार्थ करेगा । स्त्री पुरुष की दया पर निर्भर है ।..... असंभव समझा जाने वाला पुरुष स्त्री के न चाहने पर उसे दबोच कर, झपट कर ले लेता है ।"[2] इस प्रकार पुरुष अपनी पाशविक शक्तियों से उस पर स्वामी की तरह शासन करता है ।

विवाह के क्षेत्र में पुरुष पर निर्भरता :

पुरुष सत्तात्मक समाज नारी को अपने आधीन बनाये रखने के लिए अनेक षड्यन्त्र रचता आया है । इसीलिये उसने सतीप्रथा, कन्यादान, पतिव्रता

---

1- यशपाल--'देशद्रोही', पृ० 149

2- यशपाल --'झूठा सच (देश और वतन), पृ० 475

आदि अनेक आदर्श नारी की स्वतंत्रता की भावना को कुण्ठित करने के लिये बना रखे हैं । सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि नारी ने स्वयं ही पुरुष की परतन्त्रता को स्वीकार कर लिया है । नारी की यह इच्छा कि उसके गर्भ से स्त्री नहीं पुरुष पैदा हो -- उसकी दयनीय और पराधीनस्थिति को ही द्योतित करती है । इस प्रकार पराधीनता की भावना नारी-जाति में इतना घर कर गई है कि वह इतना भी नहीं सोच सकती कि विवाह संबंध में नारी की अपनी इच्छा भी कुछ मायने रखती है । झूठा सच में 'डा० प्रभुनाथ' ऐसी नारियों की ओर ही संकेतित करते हुये कहते हैं --'' ये यह कल्पना भी नहीं कर सकतीं कि स्त्री के विवाह या उसके उपयोग में उसकी अपनी इच्छा का भी सवाल हो सकता है ।''[1]

पूंजीवादी व्यवस्था में वैसे तो नारी की विवाह के प्रति अपनी इच्छा या स्वतंत्रता के प्रति सजग नहीं होती, किंतु यदि कहीं सजग होती भी है तो प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण उसकी इच्छा पूरी नहीं हो पाती । झूठासच में 'तारा' सोमराज से विवाह करने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं रखती । परन्तु आर्थिक परिस्थितियाँ उसे इस विवाह के लिए मजबूर कर देती हैं । तारा के पिता गरीब स्कूल मास्टर होने के कारण उसके लिये सोमराज से बेहतर पति ढूंढ पाने में असमर्थ रहते हैं । और तारा को अपनी असहमति के साथ भी सोमराज से विवाह करना पड़ता है । सोमराज भी तारा से विवाह करके प्रसन्न नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि तारा उससे संबंध बनाने के लिये राजी नहीं थी। उसका पुरुषत्व यह स्वीकार नहीं करता कि एक अबला नारी

---

1- यशपाल -'झूठा सच'(वतन और देश),पृ० 65

विवाह के लिये अपनी इच्छा-अनिच्छा प्रकट करे । इसलिये विवाह की प्रथम रात्रि में ही तारा को इसका जो परिणाम भुगतना पड़ता है, वह अविस्मरणीय है । सोमराज उसे गालियाँ देता हुआ तथा तरह-तरह के लांछन लगाता हुआ कहता है —'' भूखे मास्टर की औलाद, तेरी हिम्मत कि मुझसे शादी के लिये मिज़ाज दिखाये ?..... बी ए पढ़ने का बहुत घमण्ड है ? तेरी जैसी बीसियों को टाँगों से निकाल दिया है । देखूँगा तुझे, गली-गली कुत्तों और गधों से न रौंदवा दिया..... ।''[1] और अपने आहत अहम् का बदला उसे मार-पीट कर लेता है ।

वास्तव में इस पूँजीवादी समाज व्यवस्था में विवाह की परंपरायें, पुरुष की सहूलियत के अनुसार बदलती रहती हैं । वह नारी से जो प्राप्त करना चाहता है, जैसे प्राप्त चाहता है — कर सकता है, उसके लिए कुछ भी नाजायज़ नहीं होता । यदि स्त्री की सन्तान उत्पन्न नहीं हो, तो पुरुष झट से दूसरा विवाह कर सकता है । किन्तु यदि खराबी पुरुष में हो, तो नारी ऐसा नहीं कर सकती । पुरुष जाति के इसी शोषण का वर्णन करती हुई 'चित्रा' उषा से कहती है — ''..... लड़कियों के लिये तो शादी दिल्ली के लड्डू हैं । जिसे न मिलें पछताये, जो खाये सो पछताये । मर्दों के आराम संतोष का इन्तज़ाम । अपने परिवार - बिरादरी में नित्य देख रहे हैं । प्रेम - निष्ठा मर्दों की रीझ और औरत का धर्म । मर्दों को जो ज़रूरत हो, जैसा मन चाहे सब जायज़ । तुझे बता चुकी हूँ, हमारी बड़ी माँ..... उनके बाल -बच्चा नहीं हुआ था, तो फ़ादर ने दूसरी शादी कर ली । हैं तो हमारी सौतेली माँ, लेकिन हमीं जानते हैं जैसे उन्होंने निबाहा ।''[2] स्वयं चित्रा का

1- यशपाल —'झूठा सच ( वतन और देश )'-, पृ0 402

2- यशपाल —'मेरी तेरी उसकी बात'-पृ0 239

पति, उसके होते हुये भी रतिल के साथ हिल-स्टेशन पर जाता है । चित्रा सब जानती हुई भी कुछ नहीं कर सकती क्योंकि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में नारी किसी भी स्तर पर पुरुष का विरोध नहीं कर सकती । झूठा सच में 'बन्ती' के साथ उसके ससुराल वालों द्वारा किया गया बर्बर व्यवहार पुरुष के अन्याय को उद्घाटित करता है ।

सन्तान विषयक निर्भरता :

वर्तमान समाज व्यवस्था में नारी विवाह, प्रेम के विषय में तो पुरुष पर आश्रित है ही, सन्तान प्राप्ति के लिए भी उसे पुरुष की इच्छा पर ही निर्भर रहना पड़ता है । वह अपनी मर्जी से माँ नहीं बन सकती और यदि वह विवाह पूर्व माँ बन जाये तो यह उसका अपराध मानाजाता है और वह सन्तान अवैध मानी जाती है । नारी की यह सीमा है कि उसे सम्मान अपने पति की सन्तान जनने से ही मिलता है अन्यथा माँ बनने से हमारे समाज में नारी को सम्मान तो नहीं, जीवन भर के लिये लांछना अवश्य मिल जाती है । इसीलिये यदि वह विवाह से पूर्व किसी गलती से गर्भवती हो जाती है तो गर्भ-वहन करने में स्वयं को असमर्थ पाती है, अतः समाज में ज्यों की त्यों बनी रहने के लिये गर्भ नष्ट करवाना आवश्यक समझती है । झूठा सच की 'सीता' अपनी उच्छृंखलता के कारण गर्भवती हो जाती है, तो एबार्शन करवा कर समाज में पूर्ववत् बनी रहने में सफल हो जाती है । यशपाल ने दादा कामरेड में शैल को समाज स्वीकृत विवाह के बिना ही हरीश से गर्भवती दिखाकर रूढ़िग्रस्त व्यवस्था पर प्रहार किया है । शैल सामाजिक मान्यताओं एवं रूढ़ियों

की परवाह न करते हुये पूर्ण आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान के साथ हरीश के वंश का पालन करती है ।

प्राचीन मान्यताओं में परिवर्तन :

यशपाल पूंजीवादी समाज व्यवस्था के नारी के प्रति सभी षड्यंत्र को समाप्त कर देना चाहते हैं । वे मानते हैं कि आज की पढ़ी-लिखी नारी अपने अस्तित्व के प्रति सजग हो चुकी है और उसे बनाये रखने के लिये संघर्षरत है । अतः समाज को अपनी उन सभी पुरातन मान्यताओं को परिवर्तित करने का प्रयत्न करना चाहिये, जो समाज की प्रगति में बाधक सिद्ध होती हैं । '' हमें यह सोचना पड़ेगा कि मनुष्य की आयु बढ़ने के परिणामस्वरूप जब समाज के बचपन के युग की अंगुलियाँ उसके बदन को दबाने लगीं, तब उसके लिए नये विचारों का विस्तृत कपड़ा बना लेना बेहतर होगा या शरीर को दबाकर पुरानी सीमाओं में ही रखना ?''[1] स्पष्ट है कि शरीर को तो दबाकर रखना संभव नहीं होता, अंगुलियाँ अर्थात् अतीत की रूढ़ियों में ही परिवर्तन आना चाहिये। अतीत कालीन परंपरायें अपने समय में अवश्य सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में सहायक सिद्ध हुई होंगी परन्तु वे आज प्रगति के लिये सहायक और साधक न होकर बाधक ही सिद्ध होती हैं । अतः उन्हें सनातन एवं शाश्वत सत्य न मानकर परिस्थितियों के अनुरूप मानकर परिवर्तित करना ही अधिक वैज्ञानिक एवं आवश्यक है । अतीतकालीन यौन संबंधी रूढ़ियों के संबंध में यशपाल का कथन है -''हमारी परंपरागत यौन संबंधी मान्यतायें शाश्वत सत्य नहीं मानी जा सकतीं । वे परिस्थिति

---

1- यशपाल -'दादा कामरेड'(भूमिका), पृ० 6

विशेष में सामाजिक सुव्यवस्था के लिये स्वीकार की गई थी । उनकी परिस्थितियां कितनी बदल चुकी हैं ।..... यौन संबंधी मान्यताओं द्वारा व्यक्ति को बांधे रखने में क्या संगति है -- जबकि वे अव्यवस्था का कारण न बनें ।''[1]

<u>विवाह के क्षेत्र में समानता :</u>

बन्धन, नियम और कानून इसीलिये निर्मित किये जाते हैं ताकि समाज में अव्यवस्था ही हावी न हो जाये । परन्तु जब अव्यवस्था का भय न रहे, तो उन बन्धनों और नियमों का हटा दिया जाना ही अधिक श्रेयस्कर माना जाता है । आज का युग स्त्री-पुरुष की समानता का युग है, अतः उनकी समानता में बाधक बन्धनों को हटाकर उन्हें स्वतंत्र जीवन-यापन की आजादी मिलनी चाहिये । दादा कामरेड का पुरुष पात्र राबर्ट इस विषय में मानता है कि '' जब तक स्त्री पुरुष की सम्पत्ति समझी जाती थी, उसका एक पुरुष की बने रहना जरूरी था, परन्तु आज जब स्त्री को पुरुष के समान अधिकार देने की बात आप करते हैं तो इस प्रकार के नियम या कानून की जरूरत ? आप इन्कार नहीं कर सकते कि विवाह एक बन्धन है । बन्धन उस समय लागू किया जाता है, जब अव्यवस्था का डर रहता है । हैरान हूं कि समाज में इस बन्धन का इतना आदर क्यों है ? दूसरे बन्धनों की तरह इसे भी आजादी का शत्रु समझना चाहिये ।''[2] यहाँ राबर्ट विवाह-परंपरा का ही विरोध करता दिखाई पड़ता है । उसका इस विवाह से अभिप्राय परंपरागत पद्धति से किया गया ऐसा विवाह है, जिसमें स्त्री-

---

1- मधुरेश --'यशपाल के पत्र'--, पृ0 90

2- यशपाल --'दादा कामरेड', पृ0 99

पुरुष की सहमति को कोई महत्व नहीं दिया जाता । ऐसी अवस्था में, अस्तित्व के प्रति सचेतन प्राणी के लिये, विवाह सभी स्वतंत्रताओं को समाप्त करने वाले बन्धन के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

यशपाल ऐसे विवाह के घोर विरोधी हैं, जिसके लिये नारी-पुरुष समान रूप से राजी न हों । वे विवाह के लिये नारी की सहमति को पुरुष के बराबर का महत्व प्रदान करते हैं ।

विवाह का आधार प्रेम एवं पारस्परिक सामंजस्य :

यशपाल विवाह को शारीरिक संतुष्टि के लिये एक लाइसेंस मात्र के रूप में स्वीकार नहीं करते । कुछ-कुछ में डा० प्राणनाथ और तारा का विवाह इसी का प्रतीक है । तारा के रोगयुक्त होने के बावजूद भी मानसिक स्तर पर उससे अत्यधिक जुड़े होने के कारण डा० प्राणनाथ उससे विवाह कर लेते हैं । इस प्रकार विवाह से उनका अभिप्राय शारीरिक सामंजस्य के साथ-साथ स्त्री और पुरुष दोनों के मानसिक स्तर के सामंजस्य से भी है । जिसके अभाव में वे विवाह-संबंध को एक प्रबन्ध व्यभिचार के रूप में स्वीकार करते हैं —' 'पति-पत्नियों के यौन-अनुभवों की वास्तविकता के बारे में मैं यह कहने के लिये मजबूर हूँ कि ऐसी स्थिति में हमारे समाज के निन्यानवे प्रतिशत नर-नारियों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों और आवश्यकताओं का अन्यायपूर्ण दमन हो रहा है..... निन्यानवे प्रतिशत नर-नारी बिना किसी शारीरिक संतोष अथवा प्रेम के यौन-संबंधों और दाम्पत्य को निबाह रहे हैं । ऐसी अवस्था को सामाजिक मान्यता के आवरण में व्यभिचार को प्रश्रय देना ही कहना चाहिये ।..'[1] यशपाल समाज और धर्म के भय से

---

1- यशपाल —'धर्मयुग', 2 मई, 1965, पृ० 46

सामाजिक संबंधों के निर्वाह को उचित नहीं समझते । उनके अनुसार आदर्श पति-पत्नी संबंध वही है, जहाँ संबंधों का निर्धारक समाज नहीं, अपितु नारी- पुरुष दोनों का परस्पर संपूर्ण सामंजस्य एवं प्रेम है । इसी सामंजस्य के अभाव में व्यभिचार के फैलने का भय रहता है । इसीलिये यशपाल कनक, शीलो को पुरी और मोहनलाल से अलग कर देते हैं । शीलो और मोहनलाल के मध्य माधुर्य समाप्त होने के बाद, उनके संबंध को मात्र सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से लटकाये रखने को अनुचित समझने के कारण ही शीलो और रतन में संबंध स्थापित करते हैं । उनकी दृष्टि में पति-पत्नी का संबंध तथा तत्संबंधी अधिकार स्वत्व से नहीं, पारस्परिक प्रेम से या अनुरागजन्य अनुमति से होते हैं । नर-नारी के प्रेम में प्राकृतिक न्याय यही है । पति अनुराग से रक्षा तथा आश्रय देकर अधिकार प्राप्त करता है, स्वत्व से नहीं । निर्दयता, निरादर तथा स्वत्व का अहंकार प्रेम के प्र नहीं, विरोध के भाव हैं । ऐसे भाव और व्यवहार प्रेम-भावना तथा पति-पत्नी संबंध को समाप्त कर देते हैं ।[1] इस प्रकार यशपाल जहाँ कहीं भी महसूस करते हैं कि पति-पत्नी में प्रेम-भावना और पारस्परिक विश्वास एवं समझ समाप्त हो रही है, वहाँ वे दाम्पत्य संबंधों को व्यभिचार को प्रश्रय देने वाला मान कर उन्हें समाप्त करना ही श्रेयस्कर समझते हैं । कनक-पुरी, मनोरमा-सुल्तीवाला, राबर्ट-फ्लोरा के अलगाव के मूल में यही दृष्टि सामने आती है । यशपाल तलाक को बुरा नहीं मानते और परिस्थिति के अनुसार इसे स्त्री-पुरुष के जीवन को बेहतर बनाने में सहायक ही समझते हैं । 9

---

1- यशपाल -'अप्सरा का शाप', पृ0 126

तलाक संबंधी मान्यता :

यशपाल नर-नारी के विवाह का आधार परंपरागत सामाजिक रूढ़ियों के स्थान पर समता और आत्मनिर्णय को बनाना चाहते हैं। वे कहते हैं — ''क्या नर-नारी का संबंध या विवाह समता और आत्मनिर्णय के आधार तथा परिस्थितियों में हो ही नहीं सकता ? मेरे विचार में ऐसा हो सकना चाहिये, और कनक और तारा का आचरण ऐसे संबंध का द्योतक माना जा सकता है।''[1] इस प्रकार यशपाल समता और आत्मनिर्णय के आधार पर किये गये विवाह को अधिक सफल मानते हैं परन्तु इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि वे प्रेम-विवाह को आवश्यक तौर पर सफल विवाह का पर्याय ही स्वीकार करते हैं। क्योंकि यद्यपि राबर्ट-फूलोरा, मनोरमा-कुतलीवाला, कनक-पुरी — का विवाह प्रेम विवाह था, परंतु विवाह के कुछ समय उपरांत ही इनकी इनमें अलगाव हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यशपाल आत्मनिर्णय के साथ-साथ संयम एवं पारस्परिक समझ को भी पूरा-पूरा महत्त्व देते हैं। इन तीनों विवाहों के पीछे संयमित प्रेम न होकर जल्दबाजी और भावुकता थी, इसीलिये इनका अंत अलगाव या तलाक में हुआ। संबंधों का वहन केवल सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये किया जाये, यशपाल को यह स्वीकार्य नहीं है। साथ ही, वे यह मानने को तैयार नहीं है कि यदि मनुष्य से एक बार चूक या गलती हो जाये, तो अपने व्यक्तित्व का बलिदान करके वह उसे निबाहे जाये, अपितु उनके विचार से उसका निराकरण अधिक आवश्यक है। एक पुत्री के होते हुये भी कनक को पुरी से तलाक दिलवाकर गिल से विवाह

---

1- यशपाल -'धर्मयुग', 2 मई, 1965, पृ0 45

करवाना इसी का प्रतीक है । यशपाल तलाक को नारी की स्वतंत्रता के लिये आवश्यक सहायक तत्त्व मानते हैं, क्योंकि इसकी सहायता से नारी स्वयं को शोषण से बचा पाने में समर्थ पाती है । इस विषय में यशपाल लेनिन के इस कथन से बिल्कुल सहमत प्रतीत होते हैं ----''..... तलाक की आजादी को तत्काल अमल में लाने की मांग किये बग़ैर न तो कोई जनवादी हो सकता है और न समाजवादी, क्योंकि इस आजादी के अभाव का अर्थ है औरतों का चरम उत्पीड़न ।''[1] मनोरमा पुतलीवाला से तलाक द्वारा ही छुटकारा पाने में सफल होती है और अपनी इच्छानुसार स्वतंत्र जीवन-यापन करने में समर्थ होती है ।

**नारी-पुरुष का संबंध संयमपूर्ण :**

यशपाल पुरुष और स्त्री के संबंध को प्राकृतिक आवश्यकता और कर्तव्यका संबंध मानते हैं परन्तु इसके लिये वे एक दूसरे के दासत्व को स्वीकार करना उचित नहीं समझते । मार्क्सवाद के सिद्धांतों के समान ही वे स्त्री-पुरुष की पूर्ण स्वतंत्रता के समर्थक हैं, लेकिन स्वतंत्रता से उनका अभिप्राय व्यभिचार से नहीं है, किसी भी प्रकार की उच्छृंखलता को वे अनुचित मानते हैं । उनका मत है कि स्त्री-पुरुष और विवाह के संबंध में मार्क्सवाद समाज के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के विचार से पूर्ण स्वतंत्रता देता है, परन्तु उच्छृंखलता और गड़बड़ या भोग के पेशा बना लेने और इसके साथ अपनी वासना के लिए दूसरे व्यक्तियों और समाज की जीवन-व्यवस्था में उलझन डालने को वह भयंकर अपराध समझता है । मार्क्सवाद की इसी मान्यता से प्रभावित होकर यशपाल ने भी कुछ स्थानों

---

1- यशपाल - 'नारीमुक्ति'-लेनिन, पृ0 56

अधिकार नहीं है । तुम जनतंत्र और समानता की बात करते हो । जनतन्त्र और समता के समाज में वही नैतिकता और तमीज चल सकती है जो सबके लिये संभव हो ।''[1] यौनाचार एवं सेक्स के क्षेत्र की उच्छृंखलता को कम करने के लिये यशपाल मानते हैं कि जो दो व्यक्ति एक दूसरे के साथ रहना चाहते हैं उन्हें इसका अवसर मिलना ही चाहिये, क्योंकि जबरदस्ती दूर रखने से मिलने की चेष्टा में वे अवश्य कुचेष्टाओं का सहारा लेंगे और मिल पाने में असफल होने पर दुराचार और उच्छृंखलता की ओर ही अग्रसर होंगे ।

यशपाल अन्य सब चीजों की तरह जीवन में प्रेम की गति को द्वन्द्वात्मक मानते हुये उसको जीवन की सफलता एवं सहायता के लिए स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार यदि प्रेम बिल्कुल निबल रहे तो वह असंयत वासनामात्र बन जाता है और यदि जीवन में प्रेम या आकर्षण का संयम विवेक से न हो तो वह जीवन के लिए घातक भी हो सकता है । 'मनुष्य के रूप' में सुतलीवाला और मनोरमा के विवाह के पीछे यही अविवेक दिखाई देता है । विवेक और बुद्धि की सहायता के बिना केवल भावावेश में किया गया उनका विवाह सफल नहीं होता । परिणामस्वरूप उनमें संबंध-विच्छेद हो जाता है ।

स्त्री-पुरुष में प्रेम केवल बाह्याकर्षण का परिणाम नहीं होता अपितु इसके लिए मानसिक स्तर की समानता का भी बहुत महत्त्व होता है । इसी विचार को यशपाल ने खानदान कहानी संग्रह में यूं प्रकट किया है —'' प्रेम में इन्द्रियाकर्षण भी है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि प्रेम केवल इन्द्रियाकर्षण ही है । मनुष्य का जीवन पशुओं की भांति केवल इन्द्रियों के क्षेत्र तक सीमित नहीं है ।

---

1- यशपाल -'चित्र का शीर्षक'-, पृ० 111

मनुष्य मन और चिन्तन प्रधान जीव है । मानसिक संतोष के लिए वह बहुत कुछ करता है । मनुष्य जब नक्षत्रों की दूरी नापने और नये विटामिन ढूंढने में जीवन लगा देता है तो उसे किस इन्द्रिय सुख की प्राप्ति होती है ? इससे केवल मन या बुद्धि का ही संतोष होता है । ऐसे ही मन और मस्तिष्क से भी किसी वस्तु को पाने की इच्छा की जा सकती है ।...[1] इस प्रकार प्रेम और विवाह को प्राकृतिक आवश्यकता मानते हुए भी यशपाल उसके लिए उच्छृंखलता और मात्र इन्द्रिया-कर्षण को उचित नहीं ठहराते ।

धार्मिक संकीर्णताओं का विरोध :

मार्क्सवाद के प्रभाव के कारण यशपाल के अधिकतर नारीपात्र धार्मिक संकीर्णताओं के विरुद्ध स्वर उठाते ही दिखाई देते हैं । क्योंकि ये प्रेम के मामले में धर्म को निर्णायक न मानकर विधर्मी पुरुषों से भी संबंध जोड़ते दिखाई देते हैं । यशपाल से पूर्व प्रेमचंद के उपन्यासों में परोक्षरूपसे यह विद्रोही तत्व देखने को मिलता है । प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में अन्तर्जातीय प्रेम संबंध दिखाई देते हैं । रंगभूमि में ईसाई सोफिया का हिन्दू विनय से और कर्मभूमि में मुसलमान सकीना का हिन्दू अमरकान्त से प्रेम दिखाया गया है । गोदान में ब्राह्मण मातादीन का चमारिन सिलिया से प्रेम तदोपरान्त विवाह दिखाया गया है । प्रेमचंद की भांति यशपाल ने भी प्रेम को साम्प्रदायिक रूढ़ियों एवं धार्मिक बन्धनों से मुक्ति दिलाने का सफल प्रयत्न किया है । मेरी तेरी उसकी बात की नायिका उषा अपने माँ बाप की इच्छा का विरोध करके अपनी

---

1- यशपाल -खानदान - पृ० 122

जाति से बाहर डॉ० सेठ से सिविल विवाह करती है । झूठा सच में जुबैदा प्रद्युम्न से गहन प्रेम के कारण ही पाकिस्तान छोड़कर भारत आती है । उन दोनों का विवाह भी दिखाया गया है । तारा का असद से असफल प्रेम भी दर्शाया गया है । दिव्या में भी जातीय संकीर्णता का विरोध ब्राह्मण पुत्री दिव्या और दास पुत्र पृथुसेन के परस्पर प्रेम के द्वारा तथा दिव्या और वर्णव्यवस्था विरोधी मारिश के विवाह के द्वारा किया गया है ।

सन्तान-निग्रह की मान्यता :

जिस प्रकार यशपाल प्रेम और विवाह के विषय में पूर्ण सचेत होने के कारण रूढ़िवादी परंपराओं का विरोध करते हैं, उसी प्रकार विवाहोपरान्त आने-वाली सन्तान के विषय में भी, इस परंपरागत धारणा से सहमत नहीं हैं कि बच्चे तो ईश्वर की देन होते हैं और मनुष्य को उन्हें रोकने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये । इसके विपरीत उनका मत है कि सभ्य समाज सदैव सन्तान की कामना से ही अपने को तृप्त करने की ओर अग्रसर नहीं होता । यशपाल मानते हैं कि ''जब-जब भोग की प्रवृत्ति होती है, तब सदा ही सन्तान की इच्छा नहीं होती, फिर सन्तान क्यों हो ? जिस सन्तान का स्वागत करने के लिए परिस्थितियाँ न हों, उसे संसार में लाना ही अन्याय है । जीवन में ऐसा समय भी आता है जब सन्तान की इच्छा होती है, तभी उसे आना चाहिये ।''[1] इस प्रकार यशपाल जब सन्तान-निग्रह पर बल देते हैं तो इसके पीछे एक आर्थिक कारण रहता है । वो यह है कि इस पूँजीवादी समाज व्यवस्था में सभी के लिए रोजगार के अवसर समान

1- यशपाल -'दादा कामरेड', पृ० 115

रूप से उपलब्ध नहीं है । अतः आर्थिक रूप से विपन्न मनुष्य इस स्थिति में नहीं होता कि वह एक या दो/से अधिक बच्चों का समुचित ढंग से पालन-पोषण कर सके । इसी कारण यशपाल अवांछित सन्तान को जन्म देने की अपेक्षा गर्भपात को आधुनिक समाज-व्यवस्था के लिये उचित मानते हैं । झूठा सच की मती गर्भपात का समर्थन करते हुए कहती है —''इस जमाने में कितने लोग चार-पाँच बच्चों का वरदान चाहते हैं, इतने बच्चों के लिये स्वस्थ भोजन और उचित शिक्षा का प्रबंध कर सकते हैं ? उन सबकी जिन्दगी नरक बन जायेगी । क्या उनके लिये अवांछित गर्भ और बच्चे जीवनभर की बीमारी नहीं है ?''[1] अतः अपनी और आगामी पीढ़ी की जिन्दगी की बेहतरी के लिये यशपाल सन्तान-विरोध को प्रकृति विरुद्ध नहीं मानते । अपितु उसे भूख, शोषण, बीमारी, बेकारी, आदि सामाजिक बुराइयों को कम करने में सहायक स्वीकार करते हैं । अस्तु

नारी और वेश्यावृत्ति :

प्रेमचंद और उनके समकालीन लेखक वेश्यावृत्ति का कारण सामाजिक कुप्रथाओं, संकीर्ण नैतिक एवं धार्मिक बन्धनों को मानते हुये चलते हैं, परन्तु प्रगतिशील लेखक इस समस्या के लिये वर्गों में विभक्त वर्तमान व्यवस्था को ही उत्तरदायी मानते हैं, जिसमें एक ओर एक वर्ग को संपूर्ण सुविधायें उपलब्ध है तो दूसरी ओर दूसरा वर्ग भूख, शोषण, गरीबी से इतना लाचार है कि वह उचित-अनुचित कार्य करने को बाध्य है । अन्य प्रगतिशील लेखकों की तरह यशपाल भी वेश्यावृत्ति के मूल में वर्तमान व्यवस्था द्वारा उत्पन्न आर्थिक असमानता को ही प्रमुख स्वीकार करते हैं । जब नारी किसी सम्मानपूर्ण तरीके से पेट भरने में असमर्थ हो जाती है

---

1- यशपाल —'झूठा सच'—(देश का भविष्य)—, पृ० 344

तो वेश्यावृत्ति अपनाने के लिये बाध्य होती है —''वेश्या कहते हैं उसे, जो अपना पेट भरने के लिये अपना शरीर बेचे । ऐसा करने को स्त्री तभी विवश होती है जब जीवन रक्षा का कोई दूसरा उपाय उसके पास न हो ।''[1] प्रेमचंद के उपन्यास सेवासदन की नायिका सुमन भी किसी प्रकार के भोग-विलास की लालसा से इस कुत्सित कार्य में नहीं पड़ती । वह कहती है कि उसने विवश होकर ही यह मार्ग अपनाया ।

सामान्यतः आर्थिक विपन्नता के कारण ही नारी इस दुष्कर्म की ओर उन्मुख होती है, इसके पीछे उसकी धनाभाव की मजबूरी ही होती है, इसीलिये वह इसे न तो घृणास्पद मानने को तैयार होती है और न ही इस पतन के लिये स्वयं को अपराधी महसूस करती है । अपनी कहानी 'उपदेश' की एक पात्रा के द्वारा यशपाल ने इसी भाव को सम्प्रेषित करने का प्रयत्न किया है । ''..... मैं क्या घृणित काम करती हूँ, जो करती हूँ, तुम्हारे जैसों के साथ करती हूँ ।..... बट आई डू इट इन नीड एण्ड यू डू इट फार फन''[2] इन शब्दों के द्वारा लन्दन की वह युवती यथार्थ को उघाड़ कर सामने रख जाती है । इसी प्रकार 'आदमी या पैसा' (कहानी संग्रह चित्र का शीर्षक) कहानी की वेश्या भी पेट भरने के लिए आवश्यक 'टके' के लिए ही वेश्यावृत्ति में संलग्न है । वह स्वीकार करती है कि उसे पेट पालने और जिन्दगी बसर करने लायक धन मिल जाये, तो वह यह दुष्कर्म नहीं करेगी ।

व्यक्तिगत सम्पत्ति को बनाये रखने के कारण वेश्यावृत्ति पूँजीवादी समाज-व्यवस्था की ही देन है । पूँजीपति वर्ग समाज की अधिकांश सम्पत्ति का मालिक होने के कारण निर्धन वर्गों का आर्थिक रूप से शोषण करता हुआ नारी को वेश्या

---

1- यशपाल –'चक्कर क्लब', पृ० 95

2- यशपाल -'आदमी और कच्चर'–, पृ० 34

के रूप में अपना शरीर बेचने के लिए मजबूर कर देता है । साथ ही इस व्यवस्था में नारी की वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिये कोई स्थान न होने के कारण भी इस कुकर्म को बढ़ावा मिलता है । इसके विपरीत मार्क्सवादी व्यवस्था में व्यक्तिगत सम्पत्ति को सामाजिक सम्पत्ति में बदलने की योजना है । जिसके परिणामस्वरूप कोई किसी के आधीन नहीं होगा, सभी को अपनी क्षमता के अनुसार जीविका कमाने के अवसर दिये जायेंगे, अतः नारी को वेश्यावृत्ति की आवश्यकता नहीं रहेगी । यशपाल का कथन है –''समाजवादी समाज में जीविका के साधन अपनी योग्यता और अवस्था के अनुसार सभी को समान रूप से प्राप्त होंगे, इसलिये जीविका के लिए उस समाज में स्त्री को व्यभिचार से जीविका कमाने की आवश्यकता न होगी ।..[1] साथ ही मार्क्सवाद यौन-उच्छृंखलता को प्रश्रय न देने के कारण किसी स्त्री या पुरुष का दूसरों के शारीरिक भोग के लिए अपने शरीर को किराये पर देना अपराध समझता है ।

नारी की आर्थिक स्वतंत्रता :

सभी मार्क्सवादी चिन्तक समाज में नारी को पुरुष के समकक्ष देखना चाहते हैं । उनके विचार से अभी तक नारी पुरुष के आधीन इसीलिये चली आ रही है क्योंकि वह आर्थिक रूप से कभी भी स्वतंत्र नहीं हुई है और पूंजीवादी समाजव्यवस्था चूंकि नारी को पुरुष के आश्रित ही बनाये रखना चाहती है, अतः उसने नारी को घूमने-फिरने, पढ़ने-लिखने, खाने-पीने की तो आज़ादी दी है, परंतु आत्मनिर्भर नहीं बनने दिया है और न ही इसके लिये प्रोत्साहन ही दिया है । यशपाल भी मानते हैं ''पूंजीवादी व्यवस्था स्त्री को केवल भोग्य बनाने के लिए

---

1- यशपाल –'मार्क्सवाद'- पृ० 85

उसे नशाकत और नखरा सिखाने के लिये, अपने भोग और मनोरंजन के लिए, उसे चुलबुलेपन का अवसर देने के लिए 'कलात्मक' शिक्षा देने के लिए तो तैयार है, परन्तु स्त्री का पराधीनता के बन्धन तोड़कर आत्मनिर्भर बन जाना, पूँजीवादी संस्कृति को स्वीकार नहीं ...[1], क्योंकि नारी यदि आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाती है, तो वह आत्मनिर्भर होने के कारण कभी भी उसकी अधीनता स्वीकार नहीं करेगी। अतः पूँजीवादी यह जानते हुये, कि यदि स्त्री आर्थिक रूप से पुरुष के अधीन और आश्रित होगी, तो समाज में उसकी स्थिति पुरुष के समान कभी नहीं हो सकेगी और समाज में पुरुष के समान अधिकार पाने के लिये स्त्री का आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना बहुत आवश्यक है, उसका ध्यान नारी-स्वतंत्रता की ओर न दिलाकर उसे परिवार, पति, बच्चों में ही व्यस्त किये रखता है।

पूँजीवाद के इस षड्यंत्र को समझने के कारण ही मार्क्सवाद नारी को आत्मनिर्भर बनाना सर्वाधिक आवश्यक मानता है, क्योंकि आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के बाद नारी पुरुष के हाथों में भोग की वस्तु नहीं रह जाती और उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व सामने आने लगता है। यशपाल भी मानते हैं कि स्त्री की स्थिति ही समाज में ऐसी है कि जब तक उसे जीवन के साधन जुटाने का स्वतंत्र अवसर और अधिकार नहीं, उसकी स्वतंत्रता, प्रेम और आदर सब पुरुष का खिलौना है। साथ ही पूर्ण सामाजिक विकास के लिए भी नारी का विकसित होना आवश्यक है और उसका विकास आर्थिक आत्मनिर्भरता से ही हो सकता है। यशपाल का मत है —''समाज के पूर्ण विकास के लिए समाज के अर्धभाग स्त्री का सहयोग आवश्यक है। स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता स्त्री का मानवी अधिकार है। आर्थिक स्वतंत्रता के बिना स्वतंत्रता का कुछ अर्थ नहीं, वह ढोंग मात्र है। पूँजीवादी मनोवृत्ति स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता का विरोध करके नारी को अपने भोग की वस्तु

---

1- यशपाल —'बात-बात में बात', पृ० 58

बनाये रखना चाहती है ।''[1] इसीलिये पूर्ण स्वतंत्रता के लिए यशपाल के अधिकतर नारी पात्र आत्मनिर्भर होना चाहते हैं । झूठा सच की कनक अपने ढंग से स्वतंत्र जीवन-यापन करने के लिए अपने ही पांवों पर खड़ा होने के लिए संघर्ष करती है। मेरी तेरी उसकी बात में उषा का लगातार यही प्रयत्न रहता है कि वह किसी भांति आत्मनिर्भर हो जाये, क्योंकि इसके अभाव में वह अपनी रुचि के मुताबिक कोई भी कदम नहीं उठा सकती -- उसे अपने माता-पिता के निर्णय के अनुसार ही चलना पड़ता है । वह सोचती है --''मेरी मजबूरी है, डैडी - मम्मी का आश्रित होना । एम०ए० के दो वर्ष, फिर आत्मनिर्भर । किसी स्कूल कालेज में नौकरी, लखनऊ में या कहीं बाहर । ..... आत्मनिर्भर और स्वतंत्र ।''[2] झूठा सच में तारा भी स्वतंत्रता एवं आत्मनिर्भरता को एक दूसरे पर आश्रित मानकर नौकरी करना आवश्यक समझती है । नौकरी करने के बाद वह किसी पर निर्भर नहीं रहती, अपने पति सोमराज के अत्याचारों से बच पाने में सफल होती है और अपनी रुचानुसार विवाह का सम्मानित जीवन व्यतीत करती है ।

यशपाल आत्मनिर्भरता को इतना महत्व देते हैं कि प्रेम का सच्चा अधिकारी उसी व्यक्ति को स्वीकार करते हैं जो किसी के आश्रय की अपेक्षा न रखता हो और आत्मनिर्भर हो । उनका मत है --''सभी स्त्रियां आश्रय का मूल्य,प्रेम का मूल्य अपने शरीर से चुकाती हैं । आत्म-तुष्ट प्रेम तो वही है जो मूल्य में आश्रय न मांगे । प्रेम के मूल्य में जीवन भर का आश्रय पा लिया या दुख सहे । प्रेम का अधिकारी वही है जो आश्रय न मांगे, जो अपने पांव पर खड़ा हो ।''[3] इस प्रकार से तारा का डा० प्राणनाथ से प्रेम एवं विवाह इस क्षेत्र में एक नयी

---

1- यशपाल --'बात बात में बात', पृ० 57
2- यशपाल - 'मेरी तेरी उसकी बात', पृ० 269
3- यशपाल --'मनुष्य के रूप', पृ० 169

एवं स्वस्थ दृष्टि प्रदान करते हुये यशपाल के नारी विषयक मार्क्सवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है ।

पूँजीवादी पुरुष प्रधान व्यवस्था का पुरुष अपनी पाशविक शक्तियों का प्रयोग करता हुआ नारी पर बलपूर्वक शासन करता है । यशपाल पुरुष के इस बलपूर्वक शासन को अन्यायपूर्ण मानते हैं, क्योंकि इससे उसके मनुष्यत्व में कमी आती है । ज्यों-ज्यों मनुष्य सभ्यता के मार्ग पर कदम बढ़ाता जाता है, वह स्त्री के अधिकार और सम्मान को स्वीकार करता जाता है । मार्क्सवादी व्यवस्था में पुरुष यह सम्मान नारी को अपने अहम् की तुष्टि के लिए प्रदान नहीं करता, अपितु नारी अपने प्रयत्नों एवं योग्यता से सम्मान प्राप्त करने की अधिकारिणी बनती जाती है । यही कारण है कि पूँजीवादी समाज में जहाँ नारी की स्वतंत्रता छीनकर उसे 'अबला' बनाकर पुरुष उस पर शासन किया करता है, वहाँ दूसरी ओर मार्क्सवादी समाज व्यवस्था में सभी तरह की स्वतंत्रता देकर नारी को पुरुष के समान ही समझा जाता है । यशपाल नारी की महत्ता को किसी भाँति भी पुरुष से कम स्वीकार नहीं करते, चाहे वह शारीरिक रूप से पुरुष से कहीं कमज़ोर सिद्ध होती है । "यशपाल" पुरुष यदि सामाजिक परिस्थितियों के कारण शारीरिक बल में या मस्तिष्क के कामों में अधिक सफलता प्राप्त कर सका है तो स्त्री का महत्त्व पुरुष को उत्पन्न करने, परिवार और समाज को संगठित और व्यवस्थित करने में कम नहीं है । पुरुष - समाज का अस्तित्व स्त्री के बिना संभव नहीं..[1] — ऐसा मानकर नारी को समाज के अभिन्न एवं अधिक महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार करते हैं ।

---

1- यशपाल —'मार्क्सवाद', पृ० 80

## मार्क्सवाद नारी की उन्नति में सहायक :

इस प्रकार मार्क्सवाद नारी को उसकी पुरानी बेड़ियों में जकड़ने के पक्ष में नहीं है, बल्कि वह तो उसे उन्नति के पूरे-पूरे अवसर देता है । मार्क्सवादी समाज-व्यवस्था ही एक ऐसी व्यवस्था है जो नारी को परंपरागत धारणा से मुक्त करके, उसे पुरुष की दासी की स्थिति से उठा कर, पुरुष की संगिनी के रूप में स्थापित करती है । यशपाल भी नारी के इसी रूप के समर्थक हैं । और अपने नारी-पात्रों को पुरुष के समकक्ष ही प्रस्तुत करते हैं । देशद्रोही की गुलशां एक ऐसी ही मार्क्सवादी चेतना-सम्पन्न स्त्री है । वह विवाह को 'प्रेमजीवन के समीमतम साथ' के रूप में स्वीकार करती है । विवाह की परंपरागत, रूढ़िगत मान्यता के अनुसार स्त्री को पुरुष के पाँव की जूती के रूप में स्वीकार न करके उसे पुरुष की सहचरी या मित्र रूप में स्वीकार करती है । गुलशां चाहती है केवल उतना जितना वह देने के लिए तैयार है । आखिर वह समानता का दावा करती है । जीवन के सहचर को मालिक या स्वामी न करके मित्र साथी बनना चाहती है । पुरुष के सम्मुख तृप्ति और उपयोग की वस्तु बन, वह पुरुष की इच्छा के लिए विवश नहीं । वह स्वयं इच्छा कर सकती है । लज्जाकर संकुचित और भयभीत हो पुरुष के पौरुष को स्वीकार करने की, पुरुष को अपना पौरुष दिखाने का अवसर दे संतुष्ट करने की आवश्यकता उसे नहीं ।

गुलशां जैसी स्त्रियां ही उचित मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती हैं । इस प्रकार इस व्यवस्था में नारी पुरुष के लिए वस्तु या सम्पत्ति नहीं रह जाती अपितु वह हर क्षेत्र में उसके समान ही होती है । पूँजीवादी व्यवस्था की भाँति वहाँ उसकी खरीद-फरोख्त नहीं की जा सकती क्योंकि वह किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती, अपितु उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है ।

यशपाल की मान्यता भी यही है कि एकमात्र मार्क्सवाद ही नारी को पुरुष के बराबर अधिकार दिला सकता है । वे कहते हैं —'' नारी सेवा का साधन मात्र बनना चाहती है, तो उसके लिए बापू के चरणों में स्थान है । यदि वह आत्मनिर्भर स्वतंत्र मनुष्य बनकर पुरुष के कंधे से बराबर खड़ी होना चाहती है तो उसके लिए मार्क्सवाद का ही रास्ता है ।''[1]

यशपाल के अनुसार मार्क्सवाद नारी को किसी भी भाँति पुरुष से कम बुद्धिमान नहीं मानता । वह नारी को पुरुष के समान ही प्रतिभाशाली स्वीकार करता है । यही कारण है कि सोवियत रूस में जहाँ मार्क्सवादी समाज-व्यवस्था है, स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार एवं अवसर प्राप्त हैं । जिस प्रकार पुरुष पिता होने के साथ-साथ डाक्टर, मैनेजर, प्रोफेसर , इन्जीनियर आदि बन सकता है, वैसे ही वहाँ स्त्री माँ के साथ-साथ पुरुष के ही समान समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन सकती है । रूस में स्त्री को केवल चौके और बिस्तर की शोभा बनाकर नहीं रखा जाता, वे पुरुषों के बराबर ही कार्य करती हैं । वहाँ के एक कारखाने का वर्णन करते हुये यशपाल कहते हैं —'' वहाँ बहुत सी स्त्रियाँ लुहारगीरी का काम कर रही थीं । कुछ उन सलाखों को पीट-पीट कर औज़ार बना रही थीं । वैज्ञानिक क्षेत्र में वहाँ नारियों ने काफी प्रगति की है । बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण पदों पर भी वह काम करती हैं । अनेक महिलायें पायलट आफिसर हैं । वहाँ की 80% नारियाँ डाक्टर हैं । युद्ध के मैदान में वे मर्दों की तरह ही लड़ती हैं और अपने देश की रक्षा करती हैं ।''[2] अतः स्पष्ट है कि मार्क्सवादी व्यवस्था में नारी की स्थिति अन्य सभी रूढ़िवादी व्यवस्थाओं की अपेक्षा कहीं अच्छी है और यशपाल इसी

---

1- यशपाल —'बात बात में बात', पृ0 59

2- प्रश्न गवाह —'अंक दो' (जनवरी-मार्च '78), पृ0 67

मत की स्थापना करते हैं ।

अतिकामुकता का आक्षेप :

इस संपूर्ण चिन्तन को ध्यान में रखते हुये हम देखते हैं कि सामान्यतौर पर (या अधिकतर) यशपाल का दृष्टिकोण मार्क्सवाद से ही प्रभावित प्रतीत होता है, परंतु कुछेक स्थानों पर उनका भिन्न रूप भी सामने आता है । 'जनतांत्रिक समाज में सभी के लिए संभव नैतिकता ही स्वीकार्य है' का दावा करने वाले यशपाल अपनी कुछ रचनाओं में जनतंत्र विरोधी या मार्क्सवाद विरोधी विचारों को प्रकट करते दिखाई देते हैं । 'दादा कामरेड' में हरीश, राबर्ट, शैल की यौन संबंधी मान्यतायें एवं व्यवहार ऊपरी तौर से देखने पर बहुत क्रांतिकारी प्रतीत होते हैं किंतु इनका मार्क्सवादी मूल्यों से कोई संबंध नहीं है, अपितु ये तो पूंजीवादी मूल्यों के अधिक निकट पड़ते हैं क्योंकि स्वच्छंद यौन व्यवहार मार्क्सवादी व्यवस्था की विशेषता न होकर पूंजीवादी समाज-व्यवस्था का गुण है और इसी व्यवस्था में मुक्त यौन-संबंध संभव है । इसके विपरीत मार्क्सवादी विचारधारा द्वारा प्रेम के क्षेत्र में स्वतंत्रता देने का अभिप्राय मात्र इतना ही है कि मनुष्य प्रेम के आधार पर अपना जीवनसंगी निर्धारित कर सके और स्थायी संबंध बनाने में सफल हो । न कि प्रेम के नाम पर संबंधों में शिथिलता लाये । मार्क्सवादी व्यवस्था विवाह को समाप्त करना नहीं चाहती अपितु प्रेम-विहीन विवाह को समाप्त करके विवाह की परंपरागत स्थिति को सुधारना चाहती है । विवाह-व्यवस्था को समाप्त करके मुक्त यौनाचार को प्रतिपादित करना उसका अभिप्राय नहीं है ।

दादा कामरेड के अतिरिक्त 'भूख के तीन दिन' संग्रह की एक कहानी 'धूप छाँह' तथा उपन्यास 'क्यों फंसे' में विवाह विरोधी विचारों को प्रकट करते हुये वे पूंजीवादी विचारधारा की देन अति भौतिकता या एक प्रकार

की यौन उच्छृंखलता एवं नैतिकता विरोधी व्यभिचार को ही प्रश्रय देते प्रतीत होते हैं । अपनी इन दोनों रचनाओं में यशपाल विवाह को बन्धनों में जकड़ने वाली बेड़ी के रूप में स्वीकार करते हुये इसका विरोध करते हैं और प्रेम को मात्र शारीरिक क्रिया व्यापार मानकर उसे यहीं तक सीमित कर देते हैं — ''नर-नारी में प्रेम और आकर्षण का अर्थ मन और तन के परस्पर ऐक्य और मेल की चाह और प्रवृत्ति है । पूर्ण ऐ शारीरिक ऐक्य ही प्रेम-आकर्षण की निष्पत्ति है । अन्तर रहने से प्रेम-भावना की पूर्ति अथवा निष्पत्ति संभव नहीं । अन्तर और ऐक्य या प्रेम एक दूसरे का इन्कार हैं ।''[1] इस प्रकार मानसिक सामंजस्य को प्रेममें कोई स्थान न देने के कारण विवाह को अनावश्यक करार देते हैं । साथ ही नारी के सम्पर्ण को प्रवंच या जाल मानते हैं । यशपाल मानते हैं कि वेश्या रिझाने के बदले में कुछ दिनों की कमाई हड़प कर लेती है तो पतिव्रता बदले में जीवनभर के लिए रक्षा एवं पालन-पोषण वसूल करती है ।[2]

यहाँ यशपाल के विवाह विरोधी विचारों के मूल में यौन-उच्छृंखलता है, परंतु अन्य स्थानों पर उन्होंने पूँजीवादी सभ्यता की देन 'नारी की पुरुष पर आर्थिक आश्रितता' से उत्पन्न नारी की मजबूरी के कारण भी विवाह का विरोध किया है । मेरी तेरी उसकी बात में इसी तथ्य को स्वीकारते हैं कि हमारे समाज में पत्नी प्रेम से नहीं अपितु मजबूरी में स्वामी भक्ति निबाहती है''3 क्योंकि वह आर्थिक रूप से पूर्णतः निर्भर होती है । ऐसे स्थानों पर यशपाल विवाह के विरोधी नहीं अपितु आधुनिक व्यवस्था के विरोधी अवश्य हैं, जो नारी को बाँधने,

---

1- यशपाल -'संग्रह - भूख के तीन दिन (बूढ़ा बचे)', पृ० 128

2- वही (दाग ही दाग), पृ० 109

3- मेरी तेरी उसकी बात, पृ० 282

घूमने की तो आज़ादी देती है, परंतु उसे आर्थिक स्वतंत्रता न देकर पुरुष के आधीन बनाये रखती है । नारी के अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के प्रति जागरूक दादा कामरेड की 'शेल' भी पूँजीवादी समाज के ऐसे विवाह की विरोधी है जो स्त्री को पुरुष का गुलाम बनाकर रख देती है । ऐसे में पति को साथी का नाम देना भी भ्रामक है, क्योंकि स्त्री-पुरुष का संबंध वही रहता है, वह परिवर्तित नहीं होता ।

इस प्रकार जहाँ तक सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों से बचने का प्रश्न है उनका संपूर्ण विवाह-विद्रोह उचित दिखाई पड़ता है, परंतु जहाँ कहीं इस विद्रोह का कारण यौन-मुक्तता रही है, कोई सामाजिक, आर्थिक आधार न होने के कारण सेक्स अतिवाद ने इस विद्रोह को पूरी तरह उभरने नहीं दिया है ।

यशपाल के संपूर्ण नारी विषयक चिन्तन पर दृष्टिपात करने के पश्चात् हम देखते हैं कि कुछेक यौन-शैथिल्य के अपवादों को छोड़कर उनका संपूर्ण चिन्तन एवं दृष्टिकोण मार्क्सवाद से ही प्रभावित प्रतीत होता है । कन्यादान, सतीप्रथा आदि विवाह की परंपरागत रूढ़ियों का विरोध, प्रेम के क्षेत्र में चली आ रही रूढ़िगत मान्यताओं के प्रति असहमति, प्रत्येक क्षेत्र में चली नारी की पुरुष के समान अधिकार, नारी की आत्मनिर्भरता ही उसकी स्वतंत्रता है -- आदि यशपाल की मान्यतायें मार्क्सवादी चिन्तन से ही प्रभावित हैं । यशपाल स्वीकार करते हैं कि मार्क्सवादी समाजव्यवस्था ही एक मात्र व्यवस्था है जिसमें नारी का अपना व्यक्तित्व एवं अस्तित्व है, वह अमुक की ही वधू न होकर स्वयं भी वधू होती है, जहाँ पुरुष के लिए प्राप्य सभी अवसर नारी के लिए भी सुलभ हैं । मार्क्सवादी व्यवस्था ही नारी को पुरुष के समान समाज का अंग मानकर उसे संपूर्ण राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक अधिकार प्रदान करती है और आत्मनिर्भरता देकर उसे सही अर्थों में स्वतंत्र नारी का स्वरूप प्राप्त करने में सहायता देती है ।

—

# अध्याय तीन

## दिव्या में नारी का स्वप्न

## अध्याय-तीन

## दिव्या में नारी का स्वरूप

दिव्या यशपाल की श्रेष्ठ कृति है । यद्यपि इस उपन्यास को ऐतिहासिक माना जाता रहा है, लेकिन ध्यान से देखने पर तथा उपन्यासकार के मन्तव्य को दृष्टि में रखते हुये 'दिव्या' एक ऐसी ऐतिहासिक कल्पना जान पड़ती है, जिसका उद्देश्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और वातावरण में व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्रण करना है । अपने इस उपन्यास में लेखक ने व्यक्ति और समाज में सदा से चले आ रहे संघर्ष या द्वन्द्व को चित्रित किया है और इस द्वन्द्व में निरन्तर पिसने और शोषित होने वाली नारी को विशेष रूप से प्रस्तुत किया है ।

यशपाल का 'दिव्या' एक नायिका प्रधान उपन्यास है । उपन्यास का सम्पूर्ण कथानक नायिका दिव्या के इर्द-गिर्द ही घूमता है और एक तरह से दिव्या के माध्यम से नारी को जीवन भर मिलने वाली यातनाओं को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है । नारी-मुक्ति की चिरंतन समस्या को भी लेखक ने दिव्या के माध्यम से ही उठाया है । प्रस्तुत उपन्यास में नारी के स्वरूप को स्पष्टतः जानने के लिए निम्न परतुओं पर विचार करना आवश्यक है —

क- नारी का समग्र रूप से शोषण

ख- नारी स्वातन्त्र्य की चिरन्तन समस्या

### क) नारी का समग्र रूप से शोषण :

मानव सभ्यता के आदिकाल से ही नारी का शोषण निरन्तर होता आया है । ज्यों - ज्यों सभ्यता का विकास होता गया है, त्यों-त्यों ही नारी की स्थिति

और अधिक दयनीय होती गई है । शोषण की दृष्टि से दास युग, सामन्ती युग और पूंजीवादी युग-तीनों में ही नारी की स्थिति एक समान रही है । नारी पर पुरुष एवं समाज के अत्याचार का जो रूप सभ्यता के प्रारंभिक समय में था, आधुनिक काल में पूंजीवादी युग में उस अत्याचार में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं आया है। पुरुष प्रधान समाज तरह-तरह के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक बन्धनों के द्वारा नारी पर शासन करता आया है । शोषण के ढंग अवश्य समय के साथ-साथ बदलते रहे हैं, किन्तु शोषण की मात्रा में कोई कमी नहीं आई है । यशपाल ने उपन्यास 'दिव्या' में नारी के इसी प्रकार के चिरंतन शोषण को दो स्तरों पर विशेष रूप से उभार कर प्रस्तुत किया है — सामाजिक क्षेत्र में और धार्मिक क्षेत्र में ।

(1) सामाजिक क्षेत्र में शोषण :

'दिव्या' का कथानक मद्र के सामंती राज्य को लेकर चलता है । मद्र राज्य कहने के लिये गणराज्य अवश्य है, परन्तु राज्य की सम्पूर्ण शासन व्यवस्था की बागडोर कुछेक सामंतों के ही हाथों में दिखाई देती है । सामंती शासन-व्यवस्था होने के कारण मद्र-गणराज्य में सारी नारी जाति बहुत शोचनीय अवस्था में दिखलाई पड़ती है ।

इस प्रकार के पुरुष प्रधान समाज में समाज के दोनों वर्गों, अर्थात् — उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग, में नारी का भोग्या रूप ही सामने आता है । नारी को केवल भोग-विलास की वस्तु समझकर पुरुष उसका उपभोग ही करना जानता है । सम्पूर्ण उपन्यास में नारी केवल भोग्या के रूप में प्रस्तुत होती है — चाहे वह सरस्वती पुत्री के रूप में दिव्या हो या वस्त्राधिष्ठात्री के रूप में मल्लिका, अंशुमाला और

रत्नप्रभा हो अथवा दासी के रूप में या स्वयं दिव्या (दारा) ही क्यों न हो । नारी का स्वयं में कोई अस्तित्व नहीं है, उसका अस्तित्व निर्धारण भी उसका भोक्ता ही करता है । सम्पूर्ण नारी-जाति को पुरुष - आश्रित मानने वाले मातलवृक का यह कथन इस संदर्भ में सर्वथा उचित ही प्रतीत होता है —'' नारी का कुल क्या ? उसे भोगने वाले पुरुष के कुल से नारी का कुल होता है ।''[1] अर्थात् नारी चाहे उच्च वर्ग की हो अथवा निम्न वर्ग की इससे उसकी स्थिति में अंतर नहीं आता । महश्रेष्ठी प्रेस्थ भी नारी को मात्र भोग्या ही स्वीकार करता है । इसलिये अपने पुत्र पृथुसेन की दिव्या के प्रति उत्कट कामना देखकर इसे उसकी मूर्खता मानते हुये उसे समझाता हुआ कहता है —''पुत्र, स्त्री भोग्य है । मतिभ्रम होने पर मोह में पुरुष स्त्री के लिये बलिदान होने लगता है । वत्स, ऐसी ही परिस्थिति में नीतिज्ञ महत्वाकांक्षी और परलोक कामी पुरुष के लिये नारी को पतन का द्वार कहते हैं ।''[2] कालांतर में प्रेस्थ के इन्हीं विचारों से सहमति प्रकट करते हुये पृथुसेन नारी को मात्र उपभोग्य मान कर उसका इसी रूप में प्रयोग करता हुआ दिखाई देता है । प्रत्येक चरण पर पुरुष को अपने भोग के लिये तैयार देखकर कुलीना दिव्या भी नारी की नियति 'भोग्या बनने के लिये उत्पन्न' को मानते हुये कोमल पृथुसेन, कठोर-धीर रुद्रधीर, अभद्र मारिश, मातल वृक — सभी को नारी के लिये एक ही जैसे उपभोक्ताओं के रूप में स्वीकार करती है । रत्नप्रभा और अंशुमाला वेश्या होने के कारण नारी के भोग्या रूप को स्पष्ट ढंग से उजागर करती हैं । मारिश भी मानता है कि नारी सामाजिक

---

1- यशपाल - 'दिव्या', पृ0 99

2- वही, पृ0 89

विधान के कारण भोग्य है । कुलवधू यदि एक पुरुष की भोग्या है तो वेश्या सम्पूर्ण समाज की तृप्ति का साधन है । निम्न वर्ग से संबंधित दासियों का प्रयोग भी क्रीड़ा-विलास के लिये किया गया है । खिले हुये कदली के समान स्निग्ध गौर-वर्णा, उन्मुक्त सुगन्धित केशों वाली और सुखद-स्पर्श मुक्तायें धारण करने वाली दासियों का प्रयोग सामंत-कुमारों द्वारा निद्रोपचार के लिये किया जाता रहा है । पृथुसेन को नींद और विश्राम देने की दृष्टि से तरुण दासियाँ गर्म मौसम में भी लगभग निर्वस्त्र सी उसके संकेत की प्रतीक्षा में खड़ी रहती हैं । इस प्रकार उच्च और निम्न – दोनों ही वर्गों में नारी समान रूप से भोग्या बनकर ही सामने आती है ।

उपन्यास दिव्या के सामन्तवादी वातावरण में प्रेम और विवाह का आधार पारस्परिक सामंजस्य न होकर भौतिक उपकरण है । भौतिकता को प्राप्त करने की चेष्टा में नारी की कोमल भावनाओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता । दिव्या और पृथुसेन के प्रेम की असफलता के लिये प्रेस्थ और पृथुसेन की महत्वाकांक्षायें ही उत्तरदायी ठहरती हैं । महत्तिष्ठी प्रेस्थ धन और पद को प्रेम से कहीं ऊँचा मानता है, पृथुसेन को अपने प्रेम का मोह छोड़ देना पड़ता है, क्योंकि वह अपने पिता प्रेस्थ के विचारों से पूरी तरह प्रभावित हो जाता है । प्रेस्थ एक सफल कूटनीतिज्ञ के रूप में सामने आता है । वह परिस्थितियों के अनुरूप ही स्वयं को ढाल कर सम्माननीय पद प्राप्त किये रहता है । केद्रस के साथ युद्ध से पूर्व एक ओर यदि वह अश्व और रथ बेचकर लाभ कमाता है तो दूसरी ओर कोष में सहस्र स्वर्ण मुद्रायें दान में देकर धर्मस्थ का विश्वासपात्र बन जाता है । इस प्रकार का अतिभौतिकतावादी तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण लिये रहने के कारण वह पृथुसेन का दिव्या के प्रति आकर्षण

परिस्थिति अनुसार उचित नहीं समझता । वह पृथुसेन को समझाता है –'' तुम मेरे सम्पूर्ण जीवन के प्रयत्नों को, अपने वंश के भविष्य को एक युवती के मोह में नष्ट कर देना चाहते हो ।''[1] परिणामतः पृथुसेन को अपने भविष्य की अधिक चिन्ता महसूस होती है और दिव्या के प्रेम के चक्कर में इसे नष्ट करने की अपेक्षा वह सीरो से विवाह करना उचित समझता है । राज्य के उच्चपद को प्राप्त करने का आकर्षण दिव्या का प्रेम, उसका पूर्ण समर्पण, उससे की गई प्रतिज्ञा – सभी कुछ भुला देता है । इस प्रकार पुरुष की महत्वकांक्षा के नीचे नारी दिव्या की कोमल भावनाओं को दबाकर कुचल दिया जाता है ।

इस पुरुष प्रधान समाज में नारी को जीवन की पूर्ति या उपलब्धि न मानकर, जीवन की पूर्ति का एक उपकरण-मात्र स्वीकार किया जाता है । पृथुसेन का प्रारंभ में दिव्या से प्रेम तथा तत्पश्चात् सीरो से विवाह इसी तथ्य की पुष्टि करता है । पृथुसेन के प्रेम एवं विवाह का संचालक वह स्वयं न होकर उसका पिता प्रेस्थ है, जो कि श्रेष्ठी वर्ग से संबंध रखता है । पुत्र को महासेनापति के पद पर पहुंचाने की महत्वाकांक्षा के कारण उसकी दृष्टि प्रत्येक क्षेत्र में व्यापारी के नज़रिये को लिए चलती है । उसके मतानुसार प्रेम तथा विवाह उसी से किया जाना चाहिये, जो कि उन्नति के रास्ते खोल सके । पृथुसेन और दिव्या का व्यक्तिगत आकर्षण प्रेस्थ के इसी विश्वास के विरुद्ध होने के कारण सफल नहीं हो सका । केन्द्रस से युद्ध से पूर्व जब राज्यसत्ता की बागडोर महापण्डित धर्मदेव के हाथों में होती है, तो प्रेस्थ पृथुसेन और दिव्या के मध्य बढ़ते आकर्षण को उचित समझता है, परन्तु युद्ध में पृथुसेन की

---

1- यशपाल – 'दिव्या', पृ० 88

विजय के उपरान्त राज्यसत्ता यवन-सामन्तों के हाथों में चली जाने के बाद वह पृथुसेन और दिव्या के संबंध को परिस्थिति - अनुकूल नहीं समझता, क्योंकि उसकी दृष्टि में— ''प्रतिज्ञा की परिस्थिति बदल जाने से प्रतिज्ञा का आधार नहीं रहता । उस समय देव शर्मा की कन्या से विवाह ही उचित लक्ष्य था, अब उससे अधिक श्रेष्ठ मार्ग सम्मुख है । भविष्य में तुम्हारी सफलता गणपति की कन्या से विवाह करने में ही है ।...[1] अतः शासन-सत्ता को प्राप्त करने की अभिलाषा के कारण प्रेस्थ पृथुसेन को जबरदस्ती सीरी की ओर उन्मुख कर देता है और कुछ समय के पश्चात् पृथुसेन और सीरी का विवाह सम्पन्न हो जाता है । इस प्रकार दिव्या को त्याग कर सीरी को अपनाने के पीछे नारी को सफलता का साधन मानने की प्रवृत्ति ही स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है क्योंकि दिव्या या सीरी से प्रेम या विवाह का कारण कोई मधुर भावना न होकर उनको साधन बनाकर उनके द्वारा राज्यशक्ति को प्राप्त करना ही रहता है । साथ ही प्रेस्थ तो स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि स्त्री जीवन की पूर्ति नहीं, जीवन की पूर्ति का उपकरण और साधनमात्र है ।

नारी को मात्र मनोरंजन एवं मनोविनोद की वस्तु समझकर भी उसका शोषण किया जाता रहा है । दिव्या में भी कुलीन तथा दासी – दोनों ही वर्गों की नारियों का प्रयोग भोग - विलास के लिये किया गया प्रतीत होता है । देश-निष्कासन से पूर्व तथा पश्चात् स्कंधील का एक विवाह किये होने पर भी दिव्या के साथ विवाह-संबंध के लिये प्रयत्नशील होना इसी उपरोक्त मत की पुष्टि करता है । दिव्या के कुलभ्रष्ट होने पर अंशुमाला के अस्तित्व में वह मनोविनोद की साधारण प्रतिमा के रूप में ही प्रस्तुत होती है । लोकजन रत्नप्रभा के प्रासाद में उसका नृत्य देखने आते हैं और यथेष्ट द्रव्य देकर उसे जल-विहार या वन-विहार के लिये ले जाने को तत्पर

---

1- यशपाल – 'दिव्या', पृ० 88

रहते हैं । इस आकर्षण के पीछे उनके हृदय की कोई प्रेम-भावना नहीं दिखती, अपितु यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि वे सब दिव्या अर्थात् आकर्षक नारी को मनोरंजन की वस्तु मानकर आते हैं । अंशुमाला के अतिरिक्त मल्लिका तथा रत्नप्रभा भी लोगों के लिये मनोविनोद का ही साधन हैं । यद्यपि ये तीनों कला की साकार प्रतिमायें हैं, तथापि इन्हें विलास के रूप में ही प्रयुक्त किया जाता है । इनके अतिरिक्त दासी-वर्ग की नारियों का प्रयोग भी इसी रूप में किया गया है । दासी चाहे धर्मस्थ के प्रासाद की हो अथवा मल्लिका के महल में मद्य का आधार पकड़ने वाली, धनी तथा कुलीन पुरुष अपनी इच्छानुसार उसका उपभोग कर सकता है । पितृव्य देवधर्मा के प्रासाद में आर्य विनय द्वारा स्पर्श किये जाने पर दासी धाया लज्जा कर सकुचाने का भी अधिकार नहीं रखती है । इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे वातावरण में संपूर्ण नारी-जाति ही पुरुष के मनोरंजन का साधन है ।

सामंती समाज में जहाँ पुरुष को प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त है – वह जिस किसी से भी प्रेम कर सकता है, जिस किसी का भी उपभोग कर सकता है या एक से भी अधिक विवाह कर सकता है - वहाँ नारी को किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं दी गई है । वह अपनी इच्छानुसार किसी से विवाह तो क्या प्रेम भी नहीं कर सकती । यदि कभी एकेला से वह आत्म-समर्पण कर दे, तो यह समर्पण उसके लिये कलंक का कारण बन जाता है । दिव्या का पृथुसेन के प्रति समर्पण, जो कि उसके पवित्र प्रेम का द्योतक था – जिसके अभाव में उसका प्रेम अपूर्ण रह जाता, दिव्या के लिये जीवन भर का कलंक ही नहीं, अपितु उसके संपूर्ण पतन का भी कारण बनता है । युद्ध से पूर्व दिव्या द्वारा पृथुसेन के प्रेम-रस में आकंठ डूब कर, सामाजिक विषमताओं की अनदेखा करके किया गया समर्पण उसे

कहीं का नहीं छोड़ता । युद्ध समाप्त होने पर दिव्या कोशिश करने पर भी पृथुसेन से न तो साक्षात्कार ही कर पाती है और न ही उसे अपने गर्भ के विषय में सूचित कर पाती है । उसे प्रतीत होने लगता है कि जहाँ एक विवाहिता का गर्भ परिवार के लिये उल्लास का विषय होता है, वहीं एक अविवाहिता कुमारी का गर्भ कलंक का कारण होता है । इसलिये विवाह से पूर्व नारी का स्थान पिता के घर में होता है तो विवाहोपरान्त अपने पति के घर होता है, परन्तु पति द्वारा कैना की जाने पर वह कहीं की नहीं रहती — यह मानने के कारण दिव्या घर छोड़कर अनजाने बीहड़ रास्तों पर निकल पड़ती है । उसका समर्पण ही उसके जीवन में इतने उतार लाता है । घर से निकलने के बाद दिव्या को दासी-कर्म करना पड़ता है और दासी-अवस्था में ही वह शाकुल को जन्म देती है । परन्तु जिस प्रकार पतिविहीन नारी का संपूर्ण जीवन कंटकित रहता है, उसी प्रकार पतिहीना नारी की सन्तान भी सभी अभावों से ग्रस्त रहती है । माँ होते हुये भी दिव्या शाकुल को भरपेट दूध देने में असमर्थ रहती है । वह सोचती है — ''पृथुसेन की संतान होने से शाकुल के लिये सभी कुछ प्राप्य होता और उसकी अपनी सन्तान होने से शाकुल के लिये कुछ प्राप्य नहीं ; जीवन में उसके लिये कोई स्थान नहीं । वह ऐसे पात्र से छलक गई जल की बूंद की भाँति है जो केवल सूखकर समाप्त हो जाने के लिये ही है ''[1] और कुछ समय बाद ही शाकुल को बेहतर जीवन देने की चेष्टा में वह उससे हाथ धो बैठती है । इसके विपरीत पृथुसेन दिव्या से प्रेम करने और परिणामतः उसे गर्भ देने के बाद सीरो से विवाह करके ऐश्वर्य एवं विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करता है । इससे स्पष्ट है कि उपन्यास 'दिव्या' के पुरुष प्रधान समाज में जहाँ पुरुष सभी

---

1- यशपाल – 'दिव्या' ,पृ० 123

दृष्टियों से स्वच्छन्द है, वहाँ नारी का स्वेच्छा से प्रेम, आत्मसमर्पण तथा गर्भधारण उसके अपने लिये तो लांछना का कारण बनता ही है, साथ ही उसकी होने वाली सन्तान के लिये भी समस्त दुःखों एवं अभावों का कारण बनता है।

दिव्या में वर्णित सामंतवादी समाज-व्यवस्था में नारी की बहुत ही शोचनीय दशा पर प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार नारी को सम्पत्ति समझा जाता था और ऐसा मानने के कारण ही उसका क्रय-विक्रय किया जाता था। पृथुसेन प्रेस्थ के समान ही नारी को जीवन की पूर्ति का उपकरण मानते हुये सीरो को इसी रूप में ग्रहण करता है। वह उससे विवाह भी अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिये करता है। सीरो को सम्पत्ति के रूप में स्वीकार करने के कारण ही पृथुसेन उसकी उच्छृंखलता को सहन नहीं करता, जबकि वह स्वयं भी केवल सीरो के लिये प्रतिबद्ध नहीं है और जब-तब पर-स्त्रियों और दासियों के साथ भोगविलास में लिप्त रहता है। सीरो भी स्वयं को पृथुसेन की सम्पत्ति न मानते हुये आश्रिता के स्थान पर आश्रयदाता स्वीकार करती है। वह स्पष्ट रूप से कहती है --''मैं तुम्हारी क्रीत-दासी नहीं हूँ। तुम मेरे आश्रित हो, मैं तुम्हारी आश्रित नहीं हूँ। मैं तुम्हारे पिंजरे में बद्ध सारिका नहीं हूँ, केवल तुम्हारी अंग-सेवा के लिये दासी नहीं हूँ।''[1] ऐसा वह इसीलिये कह सकती है, क्योंकि उसकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति अपने पति से अधिक मजबूत है, अतः पृथुसेन चेष्टा करने पर भी उसको अपनी सम्पत्ति नहीं बना सकता। इसके अतिरिक्त उपन्यास में अनेक स्थानों पर नारी को वस्तु के रूप में मानकर पुरुष द्वारा उसका क्रय-विक्रय किया जाता दिखाई देता है। महाश्रेष्ठी प्रेस्थ अपना विवाह भी एक खरीदी हुई दरिद्र किन्तु रूपवती द्विजकन्या से

---

1- यशपाल - 'दिव्या', पृ० 177

करता है । उपन्यास की नायिका दिव्या को भी दास-विक्रेता प्रभुदत्त द्वारा बेचा तथा ब्राह्मण चन्द्रधर द्वारा खरीदा जाता है । इस प्रकार उपन्यास दिव्या में नारी को सम्पत्ति मान कर उसका क्रय-विक्रय किया जाना उसके सामाजिक शोषण को ही उद्घाटित करता है ।

दिव्या में वर्णित दास प्रथा द्वारा तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में दासी के रूप में नारी के शोषण को ही ध्वनित किया गया है । उस समय की यह प्रथा भारतीय संस्कृति पर लगे हुये एक कलंक के समान ही है, क्योंकि तब स्वामी-जन जो व्यवहार दास-दासियों के साथ करते थे, उतनी निर्ममता तो वे अपने पशु-पक्षियों पर भी नहीं प्रकट करते थे । दास-दासियों की दशा अत्यंत दारुण थी । मनुष्य होकर भी वे पशुवत् जीने के लिये विवश थे । उन लोगों का उस समय व्यापार किया जाता था और उनका क्रय-विक्रय मानवेतर प्राणियों की भाँति ही किया जाता था । प्रभुदत्त इसी प्रकार का व्यवसायी है जो कि दासों को अधिक लाभ पर बेचने के लिये एक देश से दूसरे देश में ले जाता है । वह ही गर्भिणी दिव्या और उसकी धात्री को छलपूर्वक बन्दी बनाता है तथा दिव्या को दासी के रूप में भूधर के हाथों बेचता है । भूधर उसे किसी पशु की भाँति ठोंक बजाकर बीस मुद्रा में खरीदता है और बाद में पुरोहित चन्द्रधर को 50 मुद्रा में बेच देता है । पुरोहित के घर में दिव्या की बहुत दुर्गति की जाती है । पुरोहित उसे पुत्र सहित इसलिये क्रय कर के लाता है, क्योंकि उसकी पत्नी अपने सद्य-प्रसूत बालक को दुग्धपान करवाने में असमर्थ है । स्वामी के पुत्र को दूध पिलाने के कारण दिव्या का अपना पुत्र शोकुल भूख से व्याकुल रहता है । परिणामतः दिव्या या तो दूध की चोरी करती है या स्वामी-पुत्र के लिये उसके स्तनों में दूध उतर ही नहीं पाता, जिसके फलस्वरूप स्वामिनी द्वारा बार-बार उसकी प्रताड़ना की जाती है, उसे दण्ड दिया जाता है या

फिर '' वे दारा के पुत्र शाकुल को उसके सम्मुख लाने की आज्ञा देती । अपने पुत्र के प्रति ममता की अनुभूति से दारा के स्तनों से दूध और नेत्रों से जल बह चलता । उससे स्वामी की सन्तान तृप्त होती ।''[1] दिव्या की दशा गाय से भी बदतर है क्योंकि गाय से दूध प्राप्त करने के लिये कम-से-कम उसके बछड़े को तो जीवित रखा ही जाता है, किन्तु दिव्या से दूध से प्राप्त करने के लिये उसके पुत्र को छीनने की चेष्टा की जाती है । दासी दिव्या के बार-बार दूध चोरी करने के कारण पुरोहित शाकुल को कहीं विक्रय करने का निर्णय करता है । लेकिन उसे बेच दिया जाने से पहले ही दिव्या शाकुल को लेकर भाग निकलती है, परन्तु दुर्भाग्यवश अपने कार्य में सफल नहीं होती और यमुना नदी के तट पर पुरोहित द्वारा पुनः पकड़े जाने के भय के कारण नदी में पुत्र सहित कूद पड़ती है । बचाये जाने पर महाउपरिक रविशर्मा से आत्महत्या की चेष्टा के अपराध के बदले में पुत्र-सहित मृत्यु-दण्डकी याचना करती है, परन्तु रविशर्मा उसे दासी की सही स्थिति से अवगत कराते हैं – '' दण्ड अपराधी की इच्छा से नहीं हो सकता । ब्राह्मण की दासी और उस दासी की सन्तान दोनों ही ब्राह्मण की सम्पत्ति हैं । सम्पत्ति की इच्छा से सम्पत्ति का उपयोग नहीं होता ।''[2] इस प्रकार दासी को सम्पत्ति मानते हुये जहाँ एक ओर उसे मातृत्व से वंचित रखा जाता है, वहाँ दूसरी ओर उसे उसके नारीत्व से भी परे रखने की चेष्टा की जाती है । उसे नारी सुलभ लज्जा एवम् शील प्रकट करने का भी कोई अधिकार नहीं दिया जाता । धर्मस्थ के प्रासाद में दिव्या को दासी छाया

---

1- यशपाल–'दिव्या', पृ० 122

2- वही, पृ० 133

इसका स्पष्ट उदाहरण है । सामान्य नारी के समान ही शील प्रकट करने पर आर्या अमिता उसे अपने कक्ष से निकाल देती हैं । छाया दिव्या को अपनी स्थिति बतलाती हुई कहती है — "पात्र प्रस्तुत करने पर आर्य ने कौतुक से हाथ मेरे अंग पर दबा दिया । मेरे लज्जा कर सकुचने से आर्या कुपित हो गईं । बोलीं, तू छली और कुलटा है । दासी होकर कुल-ललनाओं की भाँति लाज का नाट्य करती है । तू आर्य को मोहित करना चाहती है ।"[1] दासी के शोषण का एक अन्य रूप भी मिलता है कि छाया अपने प्रेमी बाहुल से मात्र इसलिये प्रेम नहीं कर सकती, क्योंकि वह दासी है । उस समय दास होने का अभिप्राय था — अपने स्वामी के लिये जीना-मरना, न कि स्वयं अपने लिये । इस तरह से दासी को सामान्य नारी से भिन्न करके देखा तो जाता ही था, साथ ही उसके लिये शारीरिक कष्ट का दण्ड-विधान भी था । दिव्या के गर्भिणी होने पर लज्जा के कारण अपनी धाता के साथ चुपचाप चले जाने के उपरान्त, दिव्या के साथ धाता की भी अनुपस्थिति के कारण, पण्डित विष्णु शर्मा को उसकी पुत्री छाया के अभिसंधि में सम्मिलित होने की आशंका होती है । इसलिये वे दो प्रतिहारियों को आदेश देते हैं कि दासी धाता की पुत्री छाया को विशेष रूप से पीड़ित करके रहस्य जाना जाये । और इसी विशेष पीड़ा दिये जाने के फलस्वरूप छाया मृत्यु को प्राप्त होती है । इससे स्पष्ट है कि सामंती समाज-व्यवस्था में नारी के मातृत्व और नारीत्व का अनादर करके उसे दासी के रूप में भी शोषित किया जाता है ।

प्रस्तुत उपन्यास में नारी पर पुरुष के अत्याचार का एक और रूप मिलता है — वेश्या - नारी के शोषण के रूप में । नारी - जाति के दोनों वर्गों —

---

1- यशपाल — 'दिव्या', पृ० 34

उच्च वर्ग तथा दासी वर्ग के साथ ही साथ आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर तथा अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखने वाली-वेश्या नारी भी सामाजिक शोषण के चक्र से बच पाने में समर्थ नहीं होती। स्त्री जाति की दोनों अन्य श्रेणियाँ तो जहाँ पुरुष पर निर्भरता के कारण शोषित होती हैं, वहाँ इस दृष्टि से स्वतन्त्र होने पर भी वेश्या पुरुष के चंगुल से छुटकारा नहीं पा सकती। इसका प्रमुख कारण यह है कि वेश्या भी सामाजिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, इसलिये सामाजिक वर्ण-व्यवस्था उसे स्वतः - सम्पन्न बना कर मनमानी करने का लाइसेंस देना उचित नहीं समझती। इसी कारण सागल नगरी में पुनः - प्रस्थापित वर्णाश्रम - धर्म पद्धति ब्राह्मण कन्या दिव्या को जहाँ पहले यवनकुमार से विवाह की आज्ञा नहीं देती, वहाँ अब उसे इच्छानुसार जनपद कल्याणी के पद पर बैठने की अनुमति भी नहीं देती। वर्ण-व्यवस्था के बन्धनों के कठोर होने के कारण अभिजात कुलीन नारी वेश्या-वृत्ति स्वीकार नहीं कर सकती। वर्णाश्रम व्यवस्था में नारी कठपुतली की तरह असहाय बना दी जाती है। अतः दिव्या द्विज - कन्या होने के नाते चाहने पर भी जनपद कल्याणी नहीं बन सकती, क्योंकि " भद्र में द्विजकन्या वेश्या के आसन पर बैठ कर जन के लिए भोग्य बन कर वर्णाश्रम को अपमानित नहीं कर सकती "[1] चाहे व्यवस्था और ये नियम पुरुष द्वारा नारी को पंगु बनाकर उसका भोग करने के लिये बनाये गये ढकोसले ही क्यों न हों। स्पष्ट है कि वेश्या-नारी भी सामाजिक शोषण के चक्र से बची हुई नहीं है।

यशपाल ने नारी के सामाजिक शोषण के जिन रूपों को दिव्या में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है, वे मात्र तत्कालीन सामंती समाज में ही उपयुक्त प्रतीत नहीं

---

1- यशपाल -'दिवृया',पृ0 214

होते, अपितु आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में भी ये काफी सीमा तक अपने मूल रूप में मिलते हैं, जिससे उपन्यास की आज के संदर्भ में भी सार्थकता सिद्ध होती है। पुरुष आज भी नारी का उपयोग अधिकतर भोग्या के रूप में करता है, आज भी वह उसके लिये मनोविनोद का ही साधन है, आज भी नारी एक भौतिक उपकरण के रूप में ही इस्तेमाल होती है — जब पुरुष नारी से विवाह करता है तो कामना करता है कि वह दहेज में नकदी के साथ-साथ, अन्य कीमती वस्तुयें भी लेकर आये। आज भी नारी यदि अपनी इच्छानुसार किसी पुरुष से प्रेम करती है या भावोद्वेग में आत्म समर्पण कर बैठती है, तो लांछना ही प्राप्त करती है इसके विपरीत पुरुष चाहे तो कितनी ही स्त्रियों से शारीरिक संबंध स्थापित कर सकता है, उस पर कहीं कोई आंच नहीं आती है। शोषण के इन सभी रूपों के आज भी विद्यमान होने का प्रमुख कारण है — पुरुष प्रधान समाज का होना, जो नारी को स्वतन्त्र अस्तित्व प्राप्त नहीं करने देता। अतः शोषण के इस ढर्रे को बदलने के लिये आवश्यक है कि संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को मूल रूप से परिवर्तित किया जाये।

(ii) धार्मिक क्षेत्र में शोषण :

सामंती व्यवस्था में जिस प्रकार सामाजिक क्षेत्र में नारी का शोषण किया जाता है, उसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी उसका शोषण बरकरार रखा जाता है। नारी को जैसे सामाजिक मान्यता एवं सम्मान के लिये पुरुष पर निर्भर रहना पड़ता है, वैसे ही धर्म - स्वीकृति के लिये भी उसके संरक्षक का होना बहुत आवश्यक होता है। नारी का भोग करने वाला ही उसका कुल - निर्धारक होता है, उसी तरह से उसके उपभोक्ता पर ही उसका धर्म निर्भर करता है। चाहे वह हिन्दू, इस्लाम,

जैन, बौद्ध — कोई भी धर्म हो । इस प्रकार जीवन यात्रा के प्रारंभ से लेकर अंत तक उसे किसी न किसी रूप में पुरुष अर्थात् संरक्षक का ही आश्रय लेना पड़ता है, पहले पिता के रूप में, फिर पति के रूप में तथा अंत में पुत्र के रूप में । उपन्यास 'दिव्या' में यशपाल ने नारी के शोषण के इसी रूप की ओर संकेत किया है ।

पुरोहित चक्रधर के यहाँ दास्य-कर्म के निर्मम अत्याचारों को सहने में असमर्थ दिव्या को बौद्ध-धर्मकी शरण - प्राप्ति ही एकमात्र ऐसा उपाय दिखाई देता है, जिसके आश्रय में वह स्वयं को तथा अपने पुत्र को जीवित रख सकती है । परन्तु बौद्ध विहार पहुँचने पर उसे ज्ञात होता है कि नारी पूर्णरूपेण पुरुषाश्रित है, धर्म-परिवर्तन के लिये उसे पति, पिता या पुत्र की अनुमति प्राप्त होना नितान्त आवश्यक है तथा यदि नारी दासी हो तो भी उसके अभिभावक की आज्ञा के बिना संघ स्त्री को शरण नहीं दे सकता । अतः इन सब में से यदि किसी की भी अनुमति प्राप्त न होने के कारण दिव्या को बौद्ध धर्म में प्रवेश नहीं मिल सकता । इसके विपरीत अपनी इच्छानुसार धर्म परिवर्तन करने में नारी तभी समर्थ हो सकती है, यदि वह आर्थिक धरातल पर स्वतः पूर्ण हो, किसी पर आर्थिक दृष्टि से निर्भर न हो अर्थात् वेश्या हो । बौद्ध-धर्म में वेश्या अम्बपाली को आश्रय इसीलिये मिल सका, क्योंकि 'वेश्या स्वतन्त्र नारी है ।' वेश्या अर्थ के लिये अपने अभिभावक पर निर्भर नहीं करती, उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होता है, वह किसी एक की नहीं होती, इसीलिये वह धर्म परिवर्तन कर सकती है — ऐसा मानने के कारण दिव्या दासत्व से मुक्त होने के लिये सोचती है — '' अपनी सन्तान को पा सकने की स्वतन्त्रता के लिए ही उसने दासत्व स्वीकार किया । अपना शरीर बेचकर उसने इच्छा को स्वतन्त्र रखना चाहा , परन्तु स्वतन्त्रता कहाँ मिली कहाँ ? नारी के लिये स्वतन्त्रता कहाँ?

.... केवल वेश्या स्वतन्त्र है।''[1] दिव्या दासी-कर्म करके या कुल-नारी के रूप में — दोनों में से किसी तरह भी स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन यापन करने में समर्थ न हो सकने के कारण वेश्या-जीवन अपनाने का निर्णय लेती है, क्योंकि तब ही वह स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्वामिनी हो सकती है। स्पष्ट है कि इस प्रकार यशपाल ने धार्मिक शोषण का व्यंग्यपूर्ण दृष्टि से चित्रण किया है। धार्मिक शोषण का यह रूप किंचित रद्दोबदल के साथ आज भी उपलब्ध होता है। आधुनिक समय में भी नारी पुरुष की इच्छा या अनुमति के विरुद्ध धर्म परिवर्तन नहीं कर सकती है।

ब ) <u>नारी स्वातन्त्र्य की चिरन्तन समस्या :</u>

यशपाल ने अपना यह नायिका प्रधान उपन्यास, युग-युगान्तर से दलित एवं प्रताड़ित नारी-वर्ग को केन्द्रित करके लिखा है। दिव्या के माध्यम से, जहाँ एक ओर उनका उद्देश्य नारी के शोषण को चित्रित करना रहा है, वहाँ साथ ही साथ उनका लक्ष्य, मार्क्सवादी दृष्टि से, चिर-शोषित नारी की स्वतन्त्रता की समस्या पर विचार करना भी रहा है।

यशपाल स्वीकार करते हैं कि हिन्दू धर्म की वर्णाश्रम व्यवस्था नारी की स्वतंत्रता के मार्ग में रूकावट ही बनकर रही है। जब भी नारी बँधी हुई लीक से हट कर कुछ प्राप्त करना चाहती है, वर्ण-व्यवस्था के विभिन्न बंधन उसके बढ़ते पाँवों पर रोक लगा देते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में दिव्या पर लगाये गये उसी प्रकार के बन्धनों का तथा उसके द्वारा उनके विरोध एवं विद्रोह का सफलतापूर्वक चित्रण किया गया है। पृथुसेन एवं दिव्या के प्रेम की असफलता के पीछे यदि प्रेस्थ की तीव्र महत्त्वाकांक्षा है तो वर्ण-व्यवस्था भी प्रमुख रूप से है। प्रेस्थ स्पष्ट रूप से पृथुसेन को कहता है — ''..... देवशर्मा की प्रपौत्री से विवाह की इच्छा करने पर उदार

---

1- यशपाल —'दिव्या', पृ0 128

देव शर्मा के आपत्ति न करने पर भी संपूर्ण द्विज समाज को अपना शत्रु बना लेंगे । द्विजवर्ग की सत्ता, इतर जन की हीनता, और इतर जन से सेवा प्राप्त करने के अधिकार पर आश्रित है । इतर जन को समान बना लेने पर उनका विशेष अधिकार क्या रह जायेगा ? इतर जन का सशक्त होना उन्हें स्वीकार नहीं ।''[1] इस प्रकार दिव्या और पृथुसेन का प्रेम एक नवयुवती और नवयुवक के मध्य प्रेम न होकर ब्राह्मण-अब्राह्मण का प्रेम बन जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उनका संबंध विच्छेद होता है । उनका यह विच्छेद वैयक्तिक न होकर सामाजिक स्तर पर है और वर्ण-पद्धति की वेदी की बलि के रूप में सामने आता है ।

वर्ण-व्यवस्था जहाँ प्रेम एवं विवाह के विषय में कोई छूट नहीं देती, वहाँ जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी इसका दृष्टिकोण यही रहता है । इसीलिये द्विजसमाज की अपने वर्ग को इतर जन से कुछ ऊँचा एवं अलग रखने की चेष्टा, दिव्या की इच्छा होने पर भी उसे जनपद कल्याणी बनने नहीं देती, क्योंकि इससे वर्ग विशेष के विशेषाधिकारों पर आँच आने की संभावना बनी रहती है ।

यशपाल ने हिन्दू धर्म के साथ-साथ बौद्ध धर्म की असमर्थता या असहिष्णुता को भी स्पष्टतः प्रकट किया है । बौद्ध-धर्म भी हिन्दू धर्म के ही समान नारी को स्वतंत्र इकाई के रूप में ग्रहण करने में असमर्थ है । यह भी उसे पुरुष के निर्मम चंगुल से बचाने में सफल नहीं होता । इसीलिये अभिभावक के अभाव में, याचना किये जाने पर भी, बौद्ध विहार में, सामाजिक विभीषिकाओं से संत्रस्त दिव्या और उसके पुत्र शाकुल को प्रवेश की अनुमति नहीं मिलती ।

इस प्रकार धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था को नारी-स्वतंत्रता के विषय में प्रतिकूल गामी मानकर यशपाल ने धर्म, कर्म, ईश्वर, परलोक आदि मूल्यों के प्रति

---

1- यशपाल, 'दिव्या', पृ० 87

अनास्था प्रकट करते हुये इनका विरोध भी किया है । उपन्यास दिव्या में यशपाल के इन्हीं विचारों का वहन मारिश करता हुआ दिखाई देता है । धर्म - विरोधी लोकायत में विश्वास करने वाला मारिश नारी-पुरुष के संबंधों को समानता के स्तर पर स्वीकार करता है । संपूर्ण उपन्यास में वही एक ऐसा व्यक्ति अथवा चरित्र है, जो नारी को पुरुष के समकक्ष रखकर देखने के कारण उन्हें अन्योन्याश्रयी स्वीकार करता है । उन्हें इस रूप में स्वीकार करने के पीछे मारिश का भौतिकतावादी दृष्टिकोण ही झलकता है । उसका विचार है कि प्रकृति ने नारी को पुरुष पर आश्रित किया है, इसी कारण पुरुष उसका उपभोग करने की चेष्टा करता है परन्तु इसके साथ ही पुरुष स्वयं भी नारी पर आश्रित रहता है, नारी के बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण - सा ही रहता है । इसी मत को स्पष्ट करते हुए मारिश दिव्या से कहता है — '' नारी प्रकृति के विधान से नहीं, समाज के विधान से भोग्य है । प्रकृति में और समाज में भी स्त्री और पुरुष अन्योन्याश्रित हैं । पुरुष का प्रश्रय पाने से ही नारी परवश है परन्तु भद्रे, नारी के जीवन की सार्थकता के लिये पुरुष का प्रश्रय आवश्यक है और नारी पुरुष का आश्रय भी है ।''[1] स्पष्ट है कि जहाँ नारी पुरुष का आश्रय चाहती है, उसे खोजती है ; पुरुष भी नारी के सामीप्य की इच्छा रखता है और उसे पाने का प्रयत्न करता है क्यों कि वह जानता है कि नारी सृष्टि का साधन है । उसमें सृजन शक्ति है, इसलिये उसे समाज एवं कुल का केन्द्र स्वीकार करते हुये पुरुष उसके चारों ओर घूमता है जैसे कोल्हू का बैल ।

---

1- यशपाल —'दिव्या', पृ0 159

पुरुष और नारी के संबंधों को समानता के स्तर पर स्वीकार करते हुये मारिश दिव्या को सांसारिक अनुभवों के ठोस धरातल पर ही स्वीकार करता है । जीवन के कटु अनुभवों से त्रस्त दिव्या को वह कुल मातृदेवी का पद या निर्वाण - प्राप्ति आदि के मिथ्या प्रलोभनों का अभिवचन न देकर जीवन का यथार्थ प्रदान करने का वचन देता है । वह स्पष्ट रूप से कहता है -- '' मारिश, देवी को राज-प्रासाद में मातृदेवी का आसन अर्पण नहीं कर सकता । मारिश, देवी को निर्वाण के मिथ्या चिरन्तन सुख का आश्वासन नहीं दे सकता । वह संसार के दुःख-सुख अनुभव करता है । अनुभूति और विचार ही उसकी शक्ति है । उस अनुभूति का ही आदान-प्रदान वह देवी से कर सकता है । वह संसार के धूलि-धूसरित मार्ग का पथिक है । उस मार्ग पर देवी के नारीत्व की कामना में वह अपना पुरुषत्व अर्पण करता है । वह आश्रय का आदान-प्रदान चाहता है । वह नश्वर जीवन में संतोष की अनुभूति दे सकता है ।..... सन्तति की परंपरा के रूप में मानव को अमरता दे सकता है ।''[1]

इस प्रकार यशपाल ने मारिश के द्वारा यह कहने का प्रयत्न किया है कि नारी द्वारा पुरुष के प्रति संपूर्ण समर्पण में तथा पुरुष के द्वारा नारी के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण में ही दोनों की स्वतंत्रता छिपी हुई है । सुधीर और पुष्पिन के प्रस्तावों को ठुकराकर मारिश के प्रति समर्पित होने से इसी विचार की पुष्टि एवं अभिव्यंजना होती है ।

---

1- यशपाल -'दिव्या', पृ० 219

लेखक का मन्तव्य, जहाँ एक ओर यह बतलाना रहा है कि नारी की स्वतंत्रता तभी संभव है जब पुरुष उसे अपने समकक्ष रखकर देखे, वहाँ दूसरी ओर उसका उद्देश्य इस तथ्य पर प्रकाश डालना भी रहा है कि नारी मात्र आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होकर अर्थात् वेश्यावृत्ति द्वारा स्वतन्त्रता एवं पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकती । उसकी आर्थिक स्वायत्तता उसे पूर्णता प्रदान करने में समर्थ सिद्ध नहीं होती । रत्नप्रभा का चरित्र इसी मत की पुष्टि करता है । वह आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न अवश्य है, भौतिकता की दृष्टि से उसे कोई अभाव भी नहीं है, परन्तु वह फिर भी संतुष्ट नहीं है । उसके पास धन का बाहुल्य है किन्तु वह निश्चय नहीं कर पाती कि वह उसे किस प्रकार भोगे, कहाँ खर्च करे । वह सोचती है — '' सुन्दर वस्त्र, आभूषण, भव्य भवन — सब कुछ है, परन्तु ये क्या संतोष देते हैं ? ये जीवन का लक्ष्य नहीं, केवल उपकरण मात्र हैं । उन्हें देखता ही कौन है ? ऐसे ही जैसे पिंजरा स्वर्ण का रहने पर भी महत्त्व कुछ पक्षी की सारिका का ही होता है ।''[1] रत्न प्रभा को यह सब व्यर्थ इसीलिये प्रतीत होता है क्योंकि उसका कोई अपना नहीं है, कोई जीवन-संगी भी नहीं है, जिसे वह अपना समझकर स्वयं को अर्पित करके, उसे पूर्णतः प्राप्त कर सके । वह वेश्या के जीवन को निस्सार मानती है, क्योंकि ''वेश्या देती है अपना अस्तित्व और पाती है केवल द्रव्य परन्तु पराजिता कुलवधू अपने समर्पण के मूल्य में दूसरे पुरुष को पाती है, किसी दूसरे पर भी अधिकार पाती है । वेश्या का जीवन ..... उल्कापात की भाँति क्षणिक तीव्र प्रकाश करके शीघ्र ही समाप्त हो जाता है । कुलवधू का जीवन मध्यम प्रकाश से चिरकाल तक टिमटिमाते दीपक की भाँति है ।''[2] रत्नप्रभा के अनुसार वेश्या की मृत्यु के पश्चात् उसका कोई अवशेष भी

---

1- यशपाल —'दिव्या', पृ० 138

2- वही, पृ० 139

नहीं बचता जबकि कुलवधू मृत्योपरान्त अपने अंशों के रूप में जीवित रहती है और मनुष्यत्व की परंपरा को अमरता प्रदान करती है । इसके विपरीत वेश्या मानवता को कुछ भी दे पाने में समर्थ नहीं होती । वह केवल मात्र भोग और कामना का ही संकेत देती नजर आती है । उसकी कला दूसरों के जीवन की वासना को पूर्ण करने में अवश्य समर्थ होती है परन्तु इसके बदले में वह स्वयं केवल धन ही प्राप्त करती है और उसकी अपनी कांक्षा अतृप्त ही रह जाती है । इसी कारण मारिश वेश्या के जीवन और उसकी स्वतन्त्रता को व्यर्थ बतलाता है क्योंकि उसकी स्वतंत्रता का भोग जन - सामान्य करता है, वह स्वयम् नहीं कर पाती, वह तो केवल कमाना जानती है । इसीलिये जब दिव्या दासत्व से त्रस्त होकर वेश्यावृत्ति को अपनाना चाहती है तो मारिश उसकी प्रताड़ना करता हुआ वेश्या को समाज का शत्रु घोषित करते हुये कहता है — " तू वेश्या बनना चाहती है ? माता का सम्मानित पद पाकर तू वेश्या बन कर समाज की शत्रु बनना चाहती है ? धन के लोभ में अपना शरीर और अपनी मातृत्व की शक्ति बेचना चाहती है ?" [1] इस प्रकार स्पष्ट है कि नारी वेश्यावृत्ति द्वारा आर्थिक स्वायत्तता अवश्य प्राप्त कर सकती है, किन्तु उसकी यह आत्मनिर्भरता व्यर्थ एवं निस्सार ही सिद्ध होती है, क्योंकि वह सत्वर के अभाव में अपूर्ण ही रहती है और इस न्यूनता की अनुभूति को धन की सहायता से पूर्ण नहीं कर सकती ।

---

1- यशपाल - 'दिव्या', पृ० 129

वेश्यावृत्ति की भाँति जीवन-क्षेत्र से पलायन नारी-स्वतंत्रता का साधक न होकर बाधक ही सिद्ध होता है । इसी कारण यशपाल संपूर्ण नारी-जाति को निवृत्ति का नहीं प्रवृत्ति का संदेश देते हैं । मारिश दिव्या को बतलाता है कि सृष्टि की नारी ही आदि शक्ति है । नारी को इससे पराङ्मुख नहीं होना चाहिये । इसीलिये पूकुसिन जब दिव्या को प्रवृत्तिमार्ग छोड़कर भिक्षुणी बनने को कहता है तो दिव्या उसे स्त्री-धर्म समझाती हुई कहती है — '' नारी का धर्म निर्वाण नहीं सृष्टि है । भिक्षु उसे अपने मार्ग पर जाने दें ।''[1]

इस प्रकार यशपाल अपने इस उपन्यास दिव्या द्वारा कहना चाहते हैं कि वेश्यावृत्ति अपनाकर अथवा जीवन-जगत् से पलायन करके नारी मुक्ति या स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकती । यह आजादी उसे तभी मिल सकती है जब स्त्री-पुरुष में भावनाओं का आदान-प्रदान हो और उनका संबंध पति-पत्नी का होने के साथ - साथ मित्र या सखा जैसा भी हो ।

## उपन्यास के प्रमुख नारी पात्र

दिव्या में नारी के स्वरूप को पूरी तरह से समझने के लिये उपन्यास के प्रमुख नारी पात्रों का संक्षिप्त परिचय भी बहुत आवश्यक है । वैसे तो आलोच्य उपन्यास नायिका प्रधान है तथा नायिका दिव्या के इर्द-गिर्द ही घटित होता है, फिर भी उपन्यास को गति तथा पूर्णता देने में रत्नप्रभा, सीरो, काया आदि ने भी योग दिया है । इसलिये दिव्या के साथ - साथ इन चरित्रों का परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक है ।

1- यशपाल –'दिव्या', पृ० 219

दिव्या :

जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है कि दिव्या, जो कि उपन्यास की सर्वप्रमुख पात्र है, संपूर्ण उपन्यास की केन्द्र है । जहाँ लेखक ने उसे कथानक का केन्द्र बिन्दु बनाया है वहाँ उसने अपना अभीष्ट भी दिव्या के माध्यम से ही सिद्ध किया है । संक्षेप में यह उपन्यास सामाजिक मान्यताओं एवं रूढ़ियों के प्रति दिव्या अर्थात् नारी का मूक विद्रोह है, जिन्हें वह अंत में तोड़ पाने में सफल होती है । परन्तु इस चरम सीमा अर्थात् परिणति को दिव्या एक झटके में ही प्राप्त नहीं करती अपितु इसे यशपाल ने दिव्या के चारित्रिक विकास के साथ बहुत सूक्ष्मता के से चित्रित किया है कि किस प्रकार प्रारंभ कि भावुक हृदया दिव्या अंत में भावना को त्यागकर अनुभव के आधार पर गारिश का चयन करती है ।

सर्वप्रथम दिव्या हमारी सम्मुख एक भावुक, अबोध, कलाविद्, युवती के रूप में सामने आती है, जो दुनियादारी की पेचीदगियों से अनभिज्ञ अपनी ही दुनिया में विचरण करती है और संभवतः इसी कारण दास-पुत्र पृथुसेन से प्रेम-संबंध स्थापित करती है । पृथु के प्रति उसका प्रेम इतना गहन है कि किसी की अपेक्षा किये बिना ही वह अपने प्रेम की घोषणा करती है । उसके प्रेम में किसी प्रकार की स्वार्थपरता की झलक नहीं दिखाई देती अपितु यह तो एक सहज प्रणयचर्या प्रतीत होता है । इसी कारण आत्मसंयम खोते हुये भी बुद्ध के समक्ष पृथुसेन को बल एवं साहस प्रदान करने के लिये सहजता से आत्मसमर्पण कर देती है — '' उसके संकट और भय में उसकी अर्धांगिनी बनने के लिए, अपना अस्तित्व उसे सौंपकर उसके हृदय में समाकर उसे साहस एवं सान्त्वना देने के लिए दिव्या आत्मसमर्पण की विजय-यात्रा के लिये प्रस्तुत हुई ।''[1] दिव्या

---

1- यशपाल - 'दिव्या', पृ० 78

का आत्म-समर्पण चरित्र की किसी कमी को दिखाने की अपेक्षा उसके व्यक्तित्व की गहराई और प्रेम की पावनता को ही अधिक उज्ज्वल बनाता है । उसका समर्पण इतना स्वाभाविक है कि उसका समर्पित न होना जहाँ उसके स्वभाव के विपरीत होता, वहाँ उसकी व्यवहार - कुशलता को भी प्रतिबिम्बित करता ।

आत्म-समर्पण की घटना इस उपन्यास में अपना विशेष महत्त्व रखती है , क्योंकि जहाँ इसके द्वारा प्रेम की चरम-सीमा अभिव्यंजित होती है - वहाँ यह दिव्या के जीवन में एक संपूर्ण परिवर्तन -- उतार -- भी लाती है । इस समर्पण के फलस्वरूप दिव्या गर्भवती हो जाती है । किन्तु जहाँ तक उसका बस चलता है, वह पृथुसिन की न केवल प्रतीक्षा करती है अपितु उसके युद्ध से लौटने के पश्चात् यथासंभव मिलने की चेष्टा भी करती है । पृथुसिन के प्रति उसका आकर्षण इतना प्रबल है कि वह प्रेम-विह्वलता के कारण सीरी का सपत्नीत्व भी स्वीकार करने को उद्यत है — '' मैं सीरी के साथ सख्य भाव से सपत्नीत्व स्वीकार करूंगी । सभी कुलीन आर्यों के परिवार में अनेक पत्नियाँ हैं । क्या सीरी भी मेरे साथ आर्य की पत्नी नहीं बन सकती है । ''[1] परन्तु पृथुसिन द्वारा उसे आश्रय नहीं मिलता, अतः गर्भ की लज्जा के कारण उसे गृह-त्यागकर दासी कार्य भी करना पड़ता है । दासी रहते हुये मातृत्व का सुख

---

1- यशपाल -'दिव्या', पृ० 93

अधिकार प्राप्त करने में असमर्थ होने के कारण स्वामी के यहाँ से पलायन करके धार्मिक आश्रय ग्रहण करना चाहती है परन्तु परिस्थितियों के द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाये जाने के लिये बाध्य हो जाती है ।

जीवन के इस पहलू पर पहुँच जाने के पश्चात् विकट वास्तविकताओं से परिचित होने के कारण दिव्या मानसिक परिपक्वता को प्राप्त करती है । अब उसे प्रेम की भावुकता विचलित नहीं करती, न ही धार्मिक आडम्बरों से वह चलायमान होती है । यही कारण है कि ऐसी स्थिति में मारिश द्वारा बार - बार प्रेम निवेदन किये जाने पर वह तटस्थता - भाव ही प्रदर्शित करती है । पृथुसेन द्वारा एक बार प्रेम-वंचना पाने के बाद मारिश की प्रणय-याचना भी उसे पृथुसेन के निवेदन जैसी ही प्रतीत होती है, अतः पूर्व समय के कटु अनुभवों के कारण मारिश की याचना को ठुकरा देती है । वह वेश्या का स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना ही उचित समझती है क्योंकि इस स्थिति में उसे अपने अस्तित्व का बलिदान नहीं करना पड़ता । इसीलिये मारिश के यह कहने पर कि 'नारी की सार्थकता सृष्टि में है', वह स्पष्टतौर पर कहती है —— '' वह सब नारी के जीवन की सार्थकता अवश्य हैं, वह नारी की दुर्दमनीय प्रकृति और स्वभाव भी है, परन्तु उस सार्थकता को नारी पा सकती है, केवल अस्तित्व के मूल्य में, केवल पुरुष की भोग्या बनकर । स्वयं दूसरे के लिये भोग्य बनकर कोई स्वयं क्या सार्थकता पायेगा, आर्य ?''[1]

---

1- यशपाल- 'दिव्या', पृ0 159

अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये जहाँ वह मारिश के प्रस्ताव की अवहेलना कर देती है, वहाँ आचार्य रुद्रधीर के निवेदन को भी ठुकरा देती है। रुद्रधीर वेश्या के रूप में देखकर भी उसे 'कुमारी दिव्या' कहता हुआ कुल-महादेवी का पद प्रदान करने का वचन देता है। परन्तु वह पदासीन होकर परतन्त्र होने की अपेक्षा कलंकित होकर स्वतन्त्र रहना बेहतर समझती है, हीन होकर भी आत्म-निर्भर रहना अच्छा समझती है। स्वत्वहीन होकर जीवित रहना उसे स्वीकार नहीं। अतः अत्यंत नम्रता पूर्वक वह रुद्रधीर को उत्तर देती हुई कहती है — ''आचार्य! कुलवधू का आसन, कुल माता का आसन, कुल महादेवी का आसन दुर्लभ सम्मान है। यह अकिंचन नारी उसके सम्मुख आदर से मस्तक झुकाती है।..... ज्ञानिआचार्य, कुलवधू का आसन, कुलमाता का आदर और कुलमहादेवी का अधिकार आर्य पुरुष का प्रश्रय मात्र है।..... आर्य, अपने स्वत्व का त्याग करके ही नारी यह सम्मान प्राप्त कर सकती है।''[1] अतः इस सम्मान की अपेक्षा वह निरादृत वेश्या की भाँति स्वतंत्र रहना ही श्रेयस्कर समझती है।

परन्तु जिस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये दिव्या सुखी जीवन की अपेक्षा वेश्या बनी रहना चाहती है, उस विकृत स्वतन्त्रता को भी समाज उससे वापस छीन लेता है। उसे सागल की पुनः-स्थापित वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था द्विज-कन्या होने के कारण वेश्यावृत्ति करने की अनुमति नहीं देती, अतः दिव्या को पुनः स्वतंत्र जीवन की खोज करनी पड़ती है। इसी प्रयत्न के फलस्वरूप वह रुद्रधीर

---

1- यशपाल - 'दिव्या', पृ० 218

के 'कुलमहादेवी के पद' तथा पृथुसेन के 'जीवन से पलायन' के प्रस्ताव को अस्वीकृत करके मारिश को स्वीकार करती है, जो कि उसके साथ रहकर समान स्तर पर भावों और विचारों का आदान-प्रदान करने की प्रतिज्ञा करता है । यद्यपि दिव्या कभी भी मारिश के प्रति आकृष्ट दिखाई नहीं देती, तथापि उसके मारिश को सहचर के रूप में स्वीकार करने के पीछे कोई क्षणिक आवेश न होकर बौद्धिक स्तर पर उससे प्रभावित होना है । उन दोनों का संबंध क्षणिक आवेग पर आधृत न होकर अनुभूति की आंच से परिपक्वता को प्राप्त संबंध है । इस प्रकार स्पष्ट है कि दिव्या के इस चारित्रिक विकास के द्वारा यशपाल 'नारी के सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह' को चित्रित करने में पूर्णतः समर्थ हुये हैं ।

**रत्नप्रभा :**

रत्नप्रभा , जो कि मधुरापुरी की गणमान्य नर्तकी है, के माध्यम से यशपाल ने वेश्याजीवन की व्यर्थता को सिद्ध करने का प्रयास किया है । रत्नप्रभा के पास धन-दौलत , मान-सम्मान — सभी पुष्कल मात्रा में उपलब्ध हैं, परन्तु सहचर की कमी के कारण उसे ये सब निरर्थक प्रतीत होते हैं । उसे अपना जीवन भी सार्थक दिखाई नहीं देता क्योंकि न तो वह किसी एक के लिये जीती है और न ही कोई एक उसके लिये जीता है । इसलिये —'' यथेष्ट द्रव्य पाकर भी स्वयं समाज के लिये भोग्य बने रहने में उसे जीवन की सार्थकता न जान पड़ती । कुलवधू के जीवन की कल्पना उसे अत्यंत आकर्षक जान पड़ती परन्तु वह अवसर कैसे हाथ से निकल गया था ।..... अपना जीवन उसे केवल जीवन के लिये कामना और उत्तेजना उत्पन्न करने का साधनमात्र जान पड़ता,

उसमें संतोष नहीं था ।''[1] अपने जीवन को निरर्थक मानते हुये भी रत्नप्रभा सभी मानवीय सद्गुणों से सम्पन्न है । वह इतनी करुणामयी है कि किसी का दुःख देख नहीं सकती, इसी कारण दिव्या को दासत्व से अत्यंत व्यथित देखकर उसे अपने साथ ले आती है और सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने की सुविधायें प्रदान करती है । अपने इन्हीं गुणों एवं यशपाल के मन्तव्य — वेश्या जीवन की व्यर्थता — की पुष्टि करने के कारण रत्नप्रभा का चरित्र अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ा है ।

<u>सीरो :</u> पृथुसेन की पत्नी तथा यवन गणपति की प्रपौत्री -- सीरो -- सामंतवादी उच्छृंखलता को ही अभिव्यक्ति देती है । मद्र गणराज्य के गणपति की इकलौती उत्तराधिकारिणी होने के कारण वह इतनी गर्विता एवं उच्छृंखल है कि अपने पति पृथुसेन को अपने सम्मुख कुछ भी नहीं गिनती । सामान्य कुलवधू के समान सीरो न तो घर में रहना पसन्द करती है और न ही केवल अपने पति तक सीमित रहती है । जिस प्रकार पृथुसेन परस्त्रियों के साथ प्रणय-लीला में मग्न रहता है, उसी प्रकार सीरो पर-पुरुषों के साथ प्रेम-क्रीड़ा में डूबी रहती है — '' सकृद महेन्द्र से पहले ही सीरो की ओर बढ़ गया । सीरो ने हँसकर अपनी बाहु उसकी ओर बढ़ा दी परन्तु मद के शैथिल्य के कारण आसन से उठ न सकी । वह हिम शीतल सुरा का चषक चूसती रही ।''[2] सीरो की उच्छृंखलता का कारण यह है कि पृथुसेन को महासेनापति बनाने के पीछे उसका ही हाथ रहता है, अतः सामान्य नारी की तरह अपने पति से डर कर नहीं रहती, अपितु

---

1- यशपाल -- 'दिव्या', पृ० 141

2- वही, पृ० 189

पुष्यमित्र के इनकार करने पर उसे खरी-खोटी सुनाती है —'' मैं तुम्हारी क्रीत-दासी नहीं हूँ । तुम मेरे आश्रित हो, मैं तुम्हारी आश्रित नहीं हूँ ।..... मेरे लिये भी संसार में केवल तुम्हीं एक पुरुष नहीं हो ।..... मैं तुम्हारे वंश-रथ की धुरी खींचने के लिये बछड़े उत्पन्न करने वाली गाय नहीं हूँ । यदि तुम मेरा अपमान करोगे, मेरे लिये विस्तृत जन समाज है । तुम्हें महासेनापति बना सकती हूँ, तो दूसरे को भी महासेनापति बना सकती हूँ ।''[1] इसी अभिमान के कारण वह जिस-तिस के साथ भोग-विलास में रत रहती है । इस प्रकार यशपाल ने सीता के माध्यम से सामंतवादी उच्छृंखलता को उजागर करने का ही सफल प्रयत्न किया है ।

'दिव्या' के नारी संबंधी इस संपूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि यशपाल ने मार्क्सवादी विचारधारा के अनुरूप ही इस उपन्यास के पात्रों एवं घटनाओं को रचा है । उपन्यास का अंत भी इसी ओर संकेत करता है । बौद्ध धर्म में आश्रय न मिलने पर दिव्या वेश्यावृत्ति के लिये बाध्य होती है, परन्तु उसमें लिप्त नहीं होती । अन्त में भी सुधीर एवं पुष्यमित्र द्वारा प्रलोभन दिये जाने पर भी उनके प्रति समर्पित न होकर मारिश के प्रति समर्पित होती है, जो कि अपने पुरुषत्व के अतिरिक्त अन्य कोई सम्पत्ति आदि समर्पित नहीं कर सकता । स्त्री-पुरुष के संबंधों को समग्र समानता के स्तर पर स्वीकार करने के कारण दिव्या मारिश को ही स्वीकार करती है ।

---

1- यशपाल —'दिव्या', पृ० 177

# अनुक्रमणिका

# ग्रंथ-सूची

## मूल ग्रंथ-सूची


| | | | |
|---|---|---|---|
| यशपाल | : | भूख के तीन दिन (कहानी संग्रह) | 1968 |
| | : | चित्र का शीर्षक ,, | 1961 |
| | : | ज्ञानदान ,, | 1966 |
| | : | खच्चर और आदमी ,, | 1965 |
| | : | ओ भैरवी ,, | 1958 |
| | : | जग का मुजरा (निबंध संग्रह) | 1962 |
| | : | चक्कर क्लब ,, | 1963 |
| | : | बात-बात में बात ,, | 1959 |
| | : | मार्क्सवाद ,, | 1973 |
| | : | मनुष्य के रूप (उपन्यास) | 1972 |
| | : | दिव्या ,, | 1977 |
| | : | अमिता ,, | 1972 |
| | : | अप्सरा का शाप ,, | 1965 |
| | : | बारह घण्टे ,, | 1963 |
| | : | झूठा सच ,, | 1977 |
| | : | दादा कामरेड ,, | 1965 |
| | : | पार्टी कामरेड ,, | 1963 |
| | : | मेरी तेरी उसकी बात ,, | 1975 |
| | : | देश द्रोही ,, | 1969 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| नागार्जुन | : | रतिनाथ की चाची (उपन्यास) | 1953 |
| | : | बलचनमा ,, | 1965 |
| | : | नई पौध ,, | 1957 |
| | : | बाबा बटेसरनाथ ,, | 1971 |
| | : | वरुण के बेटे ,, | 1971 |
| भैरवप्रसाद गुप्त | : | मशाल ,, | 1957 |
| | : | गंगा मैया ,, | 1953 |
| | : | जंजीरें और नया आदमी ,, | 1956 |
| | : | सत्ती मैया का चौरा ,, | 1959 |
| राहुल सांकृत्यायन | : | जीने के लिये ,, | 1939 |
| | : | जय यौधेय ,, | 1946 |
| | : | सिंह सेनापति ,, | 1961 |
| | : | मधुर स्वप्न ,, | 1950 |
| रांगेय राघव | : | घरौंदा ,, | 1967 |
| | : | मुर्दों का टीला ,, | 1963 |
| | : | विषाद मठ ,, | 1973 |

सहायक ग्रंथ-सूची

| | | | |
|---|---|---|---|
| डा० जनेश्वर वर्मा | : | मार्क्सवाद के मूल सिद्धांत | 1970 |
| हंसराज रहबर | : | प्रगतिवाद: पुनर्मूल्यांकन | 1966 |
| डा० नामवर सिंह | : | आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ | 1968 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| डा० प्रकाशचन्द्र गुप्त | : | आज का हिन्दी साहित्य | 1966 |
| मधुरेश | : | यशपाल के पत्र | 1977 |
| मार्क्स एंगेल्स | : | सेलेक्टिड वर्क्स | 1955 |
| ,, ,, | : | आर्ट एण्ड लिटरेचर | 1947 |
| रामविलास शर्मा | : | प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें | 1957 |
| ,, ,, | : | स्थायी मूल्य और मूल्यांकन | 1968 |
| राल्फ फाक्स | : | उपन्यास और लोक जीवन | 1979 |
| लेनिन | : | नारी मुक्ति | 1972 |
| लेनिन | : | लेनिन आन आर्ट एण्ड लिटरेचर | 1943 |
| डा० शिवकुमार मिश्र | : | यथार्थवाद | 1975 |
| डा० सुदर्शन मजीठिया | : | यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन | 1973 |
| मार्क्स एंगेल्स | : | कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र | 1975 पी०पी०एच० |
| सव्य साची | : | स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास | 1975 |
| त्रिभुवन सिंह | : | हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद | 1961 |
| डा० पारसनाथ मिश्र | : | मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल | 1972 |
| डा० सरोज गुप्ता | : | यशपाल – व्यक्तित्व और कृतित्व | |
| डा० शैल रस्तोगी | : | प्रगतिवादी उपन्यास में नारी | 1977 |
| नवल किशोर | : | आधुनिक हिंदी उपन्यास और मानवीय सार्थकता | 1977 |
| वि० अपनास्येव | : | मार्क्सवादी दर्शन | 1977 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| भगवतशरण उपाध्याय | : | भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण | 1978 |
| सुरेन्द्र चन्द्र तिवारी | : | यशपाल और हिंदी कथा साहित्य | 1955 |
| श्रीपाद अमृत डांगे | : | भारत- आदिम साम्यवाद से दास व्यवस्था तक का इतिहास | 1978 |
| डा० कुंवर पाल सिंह | : | हिंदी उपन्यास सामाजिक चेतना | 1976 |
| एंगेल्स | : | परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राजसत्ता की उत्पत्ति | पी०पी० एच०पब्लिशिंग |
| रजनी पाम दत्त | : | भारत : वर्तमान और भावी | 1976 |

पत्र-पत्रिकाएँ

आलोचना

गवाह

उत्तरार्द्ध

धर्मयुग

सारिका


—